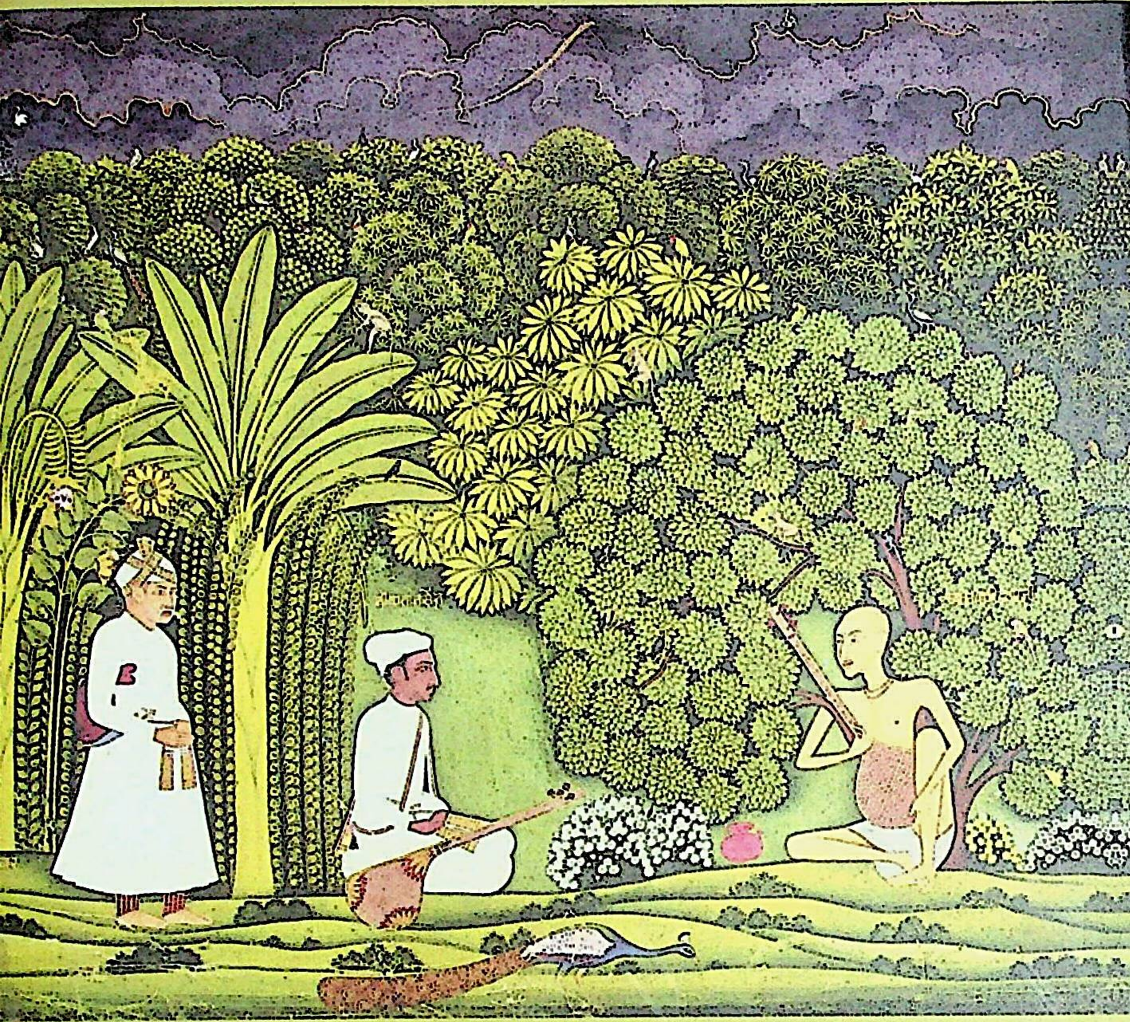

सा रे ग म

(संगीत शास्त्र)

पं० राधावल्लभ चतुर्वेदी

संगीतशिल्पी पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी का जन्म 12 जनवरी, 1917 को मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश में हुआ था। उनके अंदर रूढ़िभंजक, विद्रोही प्रकृति का मनुष्य मचला करता था। इसी के चलते 18 वर्ष की उम्र में संगीत साधना का संकल्प साध कर उन्होंने घर छोड़ दिया। आगे की कहानी लखनऊ शहर में पली-बढ़ी। यहां उन्होंने अपनी संगीत की शिक्षा पूरी की और अपनी प्रतिभा के बल पर इसी शहर को अपना कार्यक्षेत्र भी बनाया। सुगमसंगीत, लोकसंगीत एवं शास्त्रीय संगीत में वे समान रूप से पारंगत थे।

वर्ष 1940 में भातखंडे संगीत महाविद्यालय, लखनऊ से संगीत विशारद की उपाधि प्राप्त कर वे 1942 में आकाशवाणी लखनऊ में लोकसंगीतकार के पद पर नियुक्त हुए। उन्होंने सुदूर ग्रामीण अंचलों से दुर्लभ लोकगीत और लोकधुनों की खोज की और उन्हें स्वरलिपिबद्ध कर संरक्षित भी किया।

पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी संगीत की शास्त्रीयता और उसकी जटिलता की खराद पर हमेशा खुद को तराशते रहे। संगीत के सिद्धांत पक्ष पर एक सर्वजन सुलभ एवं प्रामाणिक ग्रंथ 'सा रे ग म' लिख कर उन्होंने प्रयास किया कि जिन तक वह स्वयं न पहुंच सकें, उन तक यह पुस्तक पहुंचे। शास्त्रीय संगीत को जटिल और दुरूह बनाने वाले तत्वों को उन्होंने आसान भाषा और सहज तरीक़े से संक्षेप में 'सा रे ग म' में संजोया। संगीत के ककहरे का दूसरा नाम है 'सा रे ग म'।

इस पुस्तक में नाद की उत्पत्ति से लेकर स्वर, सप्तक, श्रुति, आलाप, तान, मुर्की, रागों का समय विभाजन, रागों की उत्पत्ति, उत्तर भारतीय एवं कर्नाटकी संगीत का तुलनात्मक अध्ययन,

5·5

सा रे ग म

सा रे ग म

(संगीत शास्त्र)

लेखक

पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी

संगीत नाटक अकादेमी

नयी दिल्ली

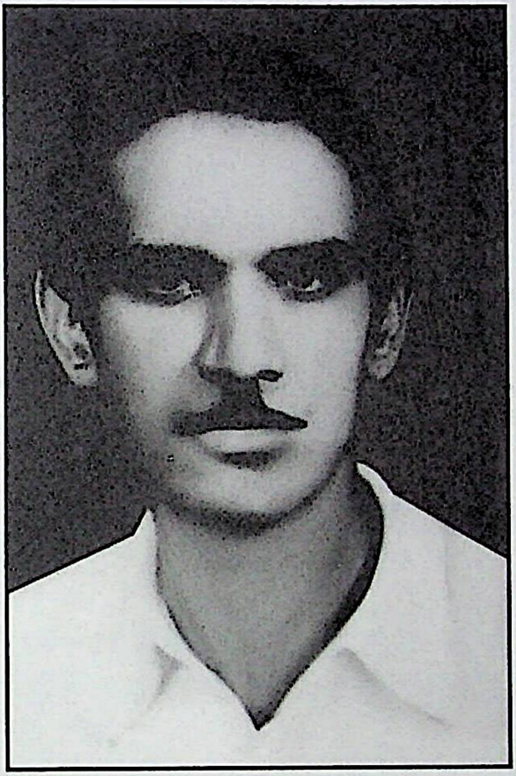

पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी
(12 जनवरी, 1917 – 10 जून, 1974)

सा रे ग म

पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी (लेखक)

SA RE GA MA

Radhavallabh Chaturvedi (Writer)

ISBN: 978-81-931657-9-9

प्रथम संस्करणः देववाणी प्रकाशन, लखनऊ, 1952

नया संस्करणः संगीत नाटक अकादेमी, नयी दिल्ली, 2019

प्रकाशक

संगीत नाटक अकादेमी

रवीन्द्र भवन, 35 फ़िरोज़ शाह रोड

नयी दिल्ली 110 001

फ़ोनः + 91 11 23387246, 23387248

फैक्सः + 91 11 23382659

email: mail@sangeetnatak.gov.in

© संगीत नाटक अकादेमी, नयी दिल्ली, 2019

मूल्यः ₹ 440/-

इस पुस्तक के किसी भी अंश को किसी भी माध्यम में प्रयोग करने के लिए प्रकाशक से लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है।

जैनेसिस प्रिंटर्स, ओखला, नयी दिल्ली 110019 में मुद्रित।

प्रकाशकीय

संगीत नाटक अकादेमी श्री राधावल्लभ चतुर्वेदी की पुस्तक 'सा रे ग म' के नये संस्करण को प्रकाशित करते हुए प्रसन्नता का अनुभव करती है।

एक शताब्दी पहले जन्मे पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी ने बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में शास्त्रीय संगीत सीखने-सिखाने की जटिलता को दूर करने के उद्देश्य से सर्वजन सुलभ शैली में 'सा रे ग म' की रचना की। इस पुस्तक में शास्त्रीय संगीत के मूलभूत ढाँचे का भूगोल उत्तर-दक्षिण भारतीय संगीत के तुलनात्मक इतिहास के साथ-साथ प्रस्तुत किया गया है।

सभ्यता और भाषा के विकास के समानांतर संगीत की उम्र ज़्यादा प्राचीन रही है। स्वर, ध्वनि और लय ने अकेले मनुष्य को जीना और कुटुंब तथा समूह में रहना सिखाया।

जीवन की इसी लय ने पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी को किशोर उम्र में घर त्यागकर संगीत साधना से जोड़ा। एक बार शुरू हुई यह यात्रा आजीवन उनके जीवन की सर्वोच्च प्राथमिकता रही।

'सा रे ग म' में शास्त्रीय संगीत के तत्वों के ताने-बाने की जानकारी देने के साथ-साथ पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी ने समाज में इसके प्रति उदासीनता, संगीत शिक्षण की दुरूहताओं और स्तरीय प्रस्तुति के लिए आवश्यक तैयारियों पर विशेष लेख लिखे हैं। इनमें उठाये गये मुद्दे आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। इसके अतिरिक्त शास्त्रीय संगीत की विकास यात्रा के सहभागी रहे प्रमुख व्यक्तित्वों और उनकी देन से पाठकों को परिचित कराया गया है।

इस तरह से अपने संक्षिप्त आकार में 'सा रे ग म' ने गागर में सागर की संतुष्टि देने का प्रयास किया है।

पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी ने शास्त्रीय और लोक संगीत की अपनी व्यापक समझ

को कड़ी मेहनत और लगन से अर्जित किया था। वे शास्त्रीय, उप शास्त्रीय, सुगम एवं लोकसंगीत के स्थापित गायक तो थे ही, आकाशवाणी लखनऊ में 1942 से 1974 तक के अपने लम्बे सफ़र में म्यूज़िक कम्पोज़र के रूप में उन्होंने श्रोताओं को ऐसे समय में भारतीय संगीत से जोड़ा और बांधा जबकि विविध भारती और रेडियो सीलोन फ़िल्म संगीत की वर्षा कर रहे थे। आजीवन वे संगीत की जड़ों की खोज और संरक्षण में जुटे रहे।

1952 में प्रकाशित 'सा रे ग म' काफ़ी लोकप्रिय हुई। इसके कई संस्करण भी छपे। संगीत नाटक अकादेमी इसके नये संस्करण के प्रकाशन के साथ आशा करती है कि संगीत प्रेमियों को यह एक बार फिर रससिक्त करेगी।

दिनांक : 6 जून, 2019

–शेखर सेन

अध्यक्ष

संगीत नाटक अकादेमी

भूमिका

पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी ने अपना सारा जीवन संगीत की साधना और उसके गूढ़ रहस्यों की खोज में लगाया। उन्होंने शास्त्रीय संगीत के जटिल इतिहास और शास्त्र को सुगम तरीक़े से जन मानस तक पहुंचाने का निरंतर प्रयास किया। इसी क्रम में उन्होंने 'सा रे ग म' शीर्षक से भारतीय शास्त्रीय संगीत के सिद्धांत पक्ष पर सर्वजन सुलभ एवं प्रमाणिक संदर्भ ग्रंथ तैयार किया।

'1950 के आस-पास एक प्रकाशक होने के नाते संगीत विषय पर कुछ प्रकाशित करने की योजना बन रही थी। उसी संदर्भ में गायन की विधा को भी प्रकाश में लाने का विचार बना। पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी जी को यह दायित्व प्रदान किया गया जिसे उन्होंने सहज एवं सहर्ष स्वीकार कर लिया। चंद माह के श्रम के फलस्वरूप 'सा रे ग म' शीर्षक से उनकी पुस्तक हमने प्रकाशित की और उसकी विशेषताओं के कारण काफ़ी लोकप्रिय हुई।'

—श्री विनय कुमार अवस्थी
मुख्य न्यासी सभापति
भुवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ।

'सा रे ग म' में नाद की उत्पत्ति से लेकर स्वर, सप्तक, श्रुति, आलाप, तान, मुर्की, रागों का समय विभाजन, रागों की उत्पत्ति, उत्तर भारतीय एवं कर्नाटकी संगीत का तुलनात्मक अध्ययन, संगीत में प्रचलित गायन शैलियां, प्रमुख रागों की व्याख्या, उत्तर भारतीय संगीत की प्रमुख तालें और उनकी विभिन्न लय, भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास एवं संगीत के क्षेत्र की प्रमुख हस्तियों की जीवनियां समाहित हैं।

'स्व. राधावल्लभ चतुर्वेदी जी एक महान संगीतज्ञ थे। उनकी स्मृतियां तानपूरे पर आलाप की तरह उतरती हैं, फिर 'सम' पर थिरकने लगती हैं। वे भारतीय शास्त्रीय

संगीत के बड़े जानकारों में थे। संगीत उनकी रग-रग में रचा-बसा था, यही कारण है कि उनकी संगीत रचनाएं सरस और स्वाभाविक होने के साथ-साथ लोकप्रिय भी हुआ करती थीं। बीसवीं सदी के छठे-सातवें दशक के लखनऊ का स्मरण करता हूं तो आकाशवाणी के लखनऊ केन्द्र को साहित्य, संगीत और रंगकर्म के बड़े और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण केन्द्र के रूप में पाता हूं। वैसे तो यहां कई संगीतकार थे, पर राधावल्लभ जी इन सबसे अलग थे। शांतचित्त और सहज स्वाभाविक वृत्ति वाले राधावल्लभ चतुर्वेदी सुदर्शन व्यक्तित्व के धनी एक बड़े कलाविद थे। कहा जाता है कि शास्त्रीय संगीत की ध्रुपद शैली का गायन अपेक्षाकृत कठिन होता है, राधावल्लभ जी इसी कठिन गायकी के अद्वितीय कलाकार थे।'

—डॉ. अरुण त्रिवेदी

अ.प्रा. रीडर एवं अध्यक्ष

हिन्दी विभाग, आर.एम.

महाविद्यालय, सीतापुर।

कलाओं के क्षेत्र में हमेशा से एक द्वन्द्व कला के लोकप्रिय स्वरूप और पारंपरिक रूप को लेकर बहस का विषय रहा है। इस पुस्तक में भी शास्त्रीय संगीत के समक्ष मौजूद चुनौतियों और उनके समाधानों पर चर्चा की गयी है। ये प्रश्न 1952 में भी समीचीन थे और आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। मंचीय लोकप्रियता और संगीत की प्रगतिशील प्रतिबद्धता की दो धाराएँ हमेशा से शास्त्रीय संगीत के विकास और सहज प्रवाह में चुनौती बनकर उपस्थित रही हैं।

'संगीत के क्षेत्र में ब्रह्मलीन राधावल्लभ चतुर्वेदी एक चमकता हुआ नाम हैं। आप शास्त्रीय संगीत और लोकसंगीत के महान ज्ञाता थे। आकाशवाणी के माध्यम से मैं चतुर्वेदी जी के सम्पर्क में आयी। आपकी ओजपूर्ण और सुरीली आवाज़ लोकगीतों में जान फूंक देती थी। मैंने उनसे लोकगीत गायन, प्रस्तुति तथा प्रसारण हेतु शिक्षा ग्रहण की। वह बहुत ही उच्चकोटि के संगीत गुरु थे। राधावल्लभ जी बहुत ही बारीकी से धुनें संवारते थे।'

—श्रीमती कमला श्रीवास्तव

पूर्व असिस्टेंट प्रोफेसर म्यूज़िकोलॉजी डिपार्टमेंट

भातखंडे संगीत संस्थान सम

विश्वविद्यालय, लखनऊ।

पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी के घर पर काफ़ी युवा आते थे रेडियो का ऑडीशन पास करने के गुर जानने। पंडित जी उनसे कुछ सुनाने को कहते। सभी फ़िल्मी गाने तैयार करके लाते। राधावल्लभ जी उनसे कहते—'भई किशोर कुमार, मोहम्मद रफ़ी अपने गाने खुद गा रहे हैं। तुम कोई ग़ैर फ़िल्मी चीज़ अपनी आवाज़ में सुनाओ। रेडियो के ऑडीशन में फिल्मी गाने नहीं सुने जाते।' जिसमें भी थोड़ी संभावना होती उसे सिखाने की वह कोशिश करते। उनके समय में बहुत सी नयी प्रतिभाएं रेडियो से जुड़ीं।

'राधावल्लभ जी की विशेषता थी कि वे लोकवाद्यों को अपने कम्पोज़ीशन में महत्ता देते थे। वे नयी प्रतिभाओं को रेडियो पर गाने का मौक़ा देने और ऑडीशन की तैयारी में सकारात्मक सहयोग करते थे। वे आकाशवाणी लखनऊ के अग्रणी म्यूज़िक कम्पोज़र माने जाते थे। आल्हा गायकी में भी उन्होंने नयी प्रतिभाओं को खोजा।'

—श्री के.के. श्रीवास्तव
पूर्व सहा. केन्द्र निदेशक,
आकाशवाणी, लखनऊ।

पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी ने आकाशवाणी लखनऊ के संगीत विभाग में कई ऐसे संगतकारों को जोड़ा जो बाहर अच्छा काम कर रहे थे। झाँसी के ढोलक वादक बफ़ाती उस्ताद अपना एकल वादन बहुत अच्छा करते थे, पर संगत करते समय कोई नया टुकड़ा कम्पोज़ीशन के अनुसार बजाना उनके लिए बहुत कष्टप्रद होता था। लेकिन राधावल्लभ जी और उनके बीच इतनी अच्छी समझ थी कि पूरे कम्पोज़ीशन में वह ढोलक के उस्ताद जी की पसंद के टुकड़ों की भी जगह बनाकर उनके रचनात्मक संतोष को तरजीह देते थे।

'बड़े भाई का नाम राधावल्लभ भगवान श्रीकृष्ण का पर्याय है। संयोग से बड़े भाई कृष्णभक्त थे। वे भगवान श्रीकृष्ण के कर्मयोग से प्रभावित थे। उन्हें चक्रधारी कृष्ण की अपेक्षा वंशीवाले कृष्ण अधिक अच्छे लगते थे।

उनके व्यक्तित्व से कोई भी व्यक्ति प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। वे मलय पर्वत के समान थे जो अपनी सुगंध से सारे वातावरण को सुगंधित कर देता है और उसके सम्पर्क में आने वाले सभी वृक्ष चंदन बन जाते हैं। वे किसी की भी निन्दा नहीं करते थे। वे दूसरे के गुणों का बखान करते थकते नहीं थे। वास्तव में वे एक संत थे। उच्च कोटि के संगीतकार होने के कारण ही लोग उनका

सम्मान करते थे।

वह कहा करते थे—मैं अपना दायित्व निभा रहा हूं, किसी को अच्छा लगे या बुरा। जब तक मैं संतुष्ट नहीं हो जाता, तब तक किसी भी रचना को प्रसारणार्थ नहीं भेजता।'

डॉ. आशाराम त्रिपाठी
पूर्व सहा. केन्द्र निदेशक
आकाशवाणी, लखनऊ।

संगीत के क्षेत्र की प्रायः सभी भूमिकाएं राधावल्लभ जी ने अदा कीं गायन की भी और वादन की भी लेकिन मन से वह सिर्फ़ सच्चे कलाकार थे और दूसरों को अच्छा परफ़ॉर्म करने लायक़ बनाकर सबसे ज़्यादा खुश होते थे। नोटेशन तैयार करने और तानपूरा मिलाने में उनका कोई सानी नहीं था।

'हमारे गुरुजी जितने प्रख्यात लोकगायक थे, उतने ही बड़े शास्त्रीय गायक भी थे। ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, दादरा, कजरी वह जो भी गाते उसमें सुरों का माधुर्य रहता था और राग तो जैसे स्वयं खड़ा हो जाता था। तानें उनके गले से झरने की तरह झरती थीं। तीन स्वरों में ही राग स्थापित कर देते थे। अगर राग देसी है तो रे नी सा ऐसे लेंगे कि लगेगा देसी आ गया। यमन है तो नी रे ग में ही हो जाता था यानी किस ढंग से, बहलावे से, उतार-चढ़ाव से उन्होंने दो-तीन सुर लगाए और राग स्थापित हो गया।

तानपूरा मिलाते हुए एक स्वर में एक श्रुति भी कम होती थी तो वह सहन नहीं कर पाते थे। इतना सुंदर तानपूरा मिलाते थे कि जवारी के तार से भी स्वर निकलता था।'

—डॉ. उषा सक्सेना
पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग
महिला महाविद्यालय, लखनऊ।

राधावल्लभ चतुर्वेदी संगीत के ऐसे पंडित थे कि बड़े-बड़े नामी कलाकारों का एक भी स्वर ग़लत लगने पर वह रिहर्सल के समय स्टूडियो में ही उन्हें टोक देते थे। याद्दाश्त इतनी अच्छी थी कि वर्षों पूर्व गाये गाने भी उनके स्मृति पटल पर अंकित रहते थे।

'अक्सर बारिश के दिनों में शाम को पान की दुकानों पर राधावल्लभ जी की कजरी व सावनी गीतों का गायन रेडियो पर सुनने को मिलता था। राधावल्लभ

जी का स्वर व अंदाज़ ऐसा था कि पांव बरबस रुक जाते थे।

मैंने भातखंडे संगीत समारोह में एक सुबह उनका गाना सुना था। लगभग एक घण्टा तोड़ी गाने के बाद छोटा ख्याल सुनाया।

लखनऊ के गणेशगंज मोहल्ले में होली का कार्यक्रम बहुत धूमधाम से मनाया जाता था। लगभग हर वर्ष गुरुजी को बुलाया जाता था। गुरुजी को लखनवी चिकनकारी का कुर्ता पहने, माथे पर गुलाल लगा हुआ, इत्र की खुशबू से सराबोर होते हुए देखा।'

—कुंवर सुंदर मेहरा

'सा रे ग म' में 'संगीत कला की उन्नति के लिए विचारणीय विषय' शीर्षक लेख में पंडित जी ने आज़ादी के बाद के भारत में सांस्कृतिक एवं कलात्मक क्षेत्रों में मौजूद चुनौतियों, समस्याओं और इन क्षेत्रों के विकास के लिए संभावित प्रयासों को स्पष्ट करने की कोशिश की है।

संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला आदि सभी ललित कलाएं सदैव से भारत में अपने उत्कर्ष पर रही हैं। भले ही संक्रांति कालों में इनकी धारा कुछ समय के लिए अवरुद्ध सी भासित हुई हो, किन्तु ये अवरोध सदैव क्षणिक और अस्थायी रहे। जन साधारण तथा कलाओं पर परम्परा से जीवन-यापन करने वालों ने उन्हें नष्ट नहीं होने दिया। देशी राजाओं और रईसों ने संगीत कला की उन्नति में पर्याप्त योग दिया। रामपुर, जयपुर, बड़ौदा, ग्वालियर आदि के दरबारों में बड़े-बड़े संगीतज्ञों को प्रश्रय और प्रोत्साहन मिला।

आधुनिक भारतीय संगीत के उद्धारक सर्वश्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, विष्णु नारायण भातखंडे, ठाकुर नवाब अली, राजा भैया पूछवाले जैसे संगीत मनीषी अवतरित हुए। संगीत कला की शिक्षा एवं उन्नति के लिए ग्वालियर, लखनऊ और बड़ौदा में उच्चकोटि के संगीत के विद्यालय स्थापित हुए। संगीत में एकरूपता के बावजूद अखिल भारतीय स्तर के संगीत सम्मेलनों में इससे जुड़े प्रश्नों पर विचार-विमर्श की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया।

परम्परा, प्रगति और प्रयोग कलाओं के विकासक्रम के तीन महत्वपूर्ण डग हैं। नवीन रागों के रागात्मक औचित्य के निर्धारण के लिए सरकार द्वारा स्थापित कला आकदमियों का ध्यान आकर्षित करने का महत्वपूर्ण सुझाव इस लेख में दिया गया है। इसके लिए विज्ञ संगीत शास्त्रियों की परामर्श समिति के गठन का भी सुझाव दिया गया। संगीत में चमत्कार तत्व, माइक्रोफ़ोन के अत्यधिक प्रयोग जैसी

चुनौतियों पर चर्चा की गयी। कलापूर्ण सुंदर रचनाओं के चयन पर ज़ोर दिया गया। देश-विदेश में संगीत की अनेक धाराओं के अध्ययन और अन्तर्राष्ट्रीय संगीत की समझ छात्रों में विकसित करने के लिए पत्र-पत्रिकाओं के अध्ययन का सुझाव दिया गया।

'जनाब पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी पुख़्ता इरादा और यक़ीन से भरपूर कमसिनी में ही अपना घर छोड़कर लखनऊ आये और मोसीक़ी की दुनिया में लखनऊ का नाम रौशन किया। ऐसे नायाब और नादिर लोकगीत ढूंढ-ढूंढकर जमा किए जो आज और आने वाली नस्लों को हमेशा फ़ायदा पहुंचायेंगे और हमारी तहज़ीब-ओ-विरासत को क़ायम और दायम रखेंगे। आपने लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत की आमेज़िश पैदा करके एक नया रंग दिया। पंडित जी ध्रुपद, धमार, ख़याल, ठुमरी, ग़ज़ल भी ख़ूब गाते थे।

हम सभी का फ़र्ज़ है कि ऐसे होनहार अश्ख़ास जिन्होंने अपनी पूरी ज़िन्दगी एक ख़ास मक़सद में गुज़ारी और आने वाली नस्लों के लिए हमारी तहज़ीबी विरासत बचाई और संभाली, उनको पूरी अक़ीदत से याद किया जाये।'

—नवाब जाफ़र मीर अब्दुल्लाह

शीश महल, लखनऊ।

'शास्त्रीय संगीत में गतिरोध और उसके कारण' लेख में राधावल्लभ जी ने संगीत में स्वर से अधिक शब्दों को महत्व दिये जाने पर चिंता प्रकट की है। आफ़ताबे मौसीक़ी स्व. उस्ताद फ़ैयाज़ खां के शब्दों में, ऐसा संगीत सरलता से सीखा और भूला जा सकता है। हल्के-फुल्के सरल संगीत का चलन काफ़ी बढ़ा और उसका स्वागत भी हुआ। किंतु कला और साधना की दृष्टि से संगीत की अवनति ही हुई।

शास्त्रीय संगीत के पुनरुत्थान के लिए पंडित जी का सुझाव है कि विज्ञ गायक कम से कम समय में श्रोताओं के सम्मुख अपनी उत्कृष्ट कला को प्रस्तुत करने का प्रयास करें। वे मानते हैं कि कलाकारों के लिए 10 मिनट के कला प्रदर्शन हेतु कम से कम 4 घण्टे का अभ्यास ज़रूरी है। इतना रियाज़ रोज़ करने के बाद ही, कोई कलाकार 10 मिनट में प्रतिक्षण नई बारीकियां प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकेगा। इससे श्रोता ऊबेंगे नहीं और शास्त्रीय संगीत की ओर उनकी अभिरुचि में भी वृद्धि होगी।

गायन शैली के साथ ही गीत भी सुंदर और काव्यमय हो तो संगीत प्रदर्शन

में चार चांद लग जाते हैं। संगीत में शुद्ध-सरस और सुंदर साहित्य के प्रयोग की आवश्यकता पर उन्होंने बल दिया।

'सन् 1954 की बात है। आगरा में ऑल इण्डिया यूथ फेस्टिवल मनाया गया। उसमें एक ग्रुप सॉन्ग कॉम्पटीशन भी था। उसमें लखनऊ से आये ग्रुप द्वारा प्रस्तुत श्री राधावल्लभ चतुर्वेदी जी का लिखा ओर कम्पोज़ किया गीत 'नन्द बाबा जी को छैया...' बहुत पसंद किया गया। तब से लेकर आज तक इस गीत के शब्द और धुन में लोगों ने कोई बदलाव नहीं किया और उसी को गाते-बजाते रहे। उसकी धुन इतनी अच्छी बन गई कि उसमें कोई फेर-बदल कभी किसी ने नहीं किया। इतनी अच्छी धुन है कि एक बार सुनकर उसको याद कर सकते हैं।

'नंद बाबा जी को छैया...' ग्रुप सॉन्ग आज पूरे भारत के विभिन्न प्रांतों में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी गाया जा रहा है।'

—श्री राममोहन दुबे
पूर्व संगीत निर्देशक,
दूरदर्शन, लखनऊ।

'भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास' लेख में राधावल्लभ जी ने संगीत के उद्‌भव और विकास को पांच कालों में विभक्त किया है—

1. वैदिक काल—2000 ई0पू0 से 1000 ई0पू0 तक।
2. प्राचीन काल—1000 ई0पू0 से 800 ई0 तक।
3. मध्य काल—800 ई0 से 1800 ई0 तक।
4. आधुनिक काल—1800 ई0 से 1947 ई0 तक।
5. अति आधुनिक काल—1947 ई0 से वर्तमान समय तक।

इतिहास के विभिन्न खण्डों में संगीत के क्रमिक विकास की चर्चा के साथ-साथ इस विकास से जुड़े प्रमुख मनीषियों पर भी संक्षिप्त टिप्पणियां इस लेख में समाहित हैं। विशेष रूप से कालिदास, भरत, दत्तिल, मतंग, नारद (प्राचीन काल); जयदेव, शारंगदेव, अमीर खुसरो, लोचन कवि, कल्लिनाथ, सुल्तान हुसेन शर्की, रामामात्य, स्वामी हरिदास, तानसेन, बैजू बावरा, राजा मानसिंह तोमर, सूरदास, तुलसीदास, मीरा, कबीरदास (संत कवि); पं0 पुण्डरीक बिट्ठल, पं0 सोमनाथ, पं0 दामोदर, पं0 अहोबल, हृदय नारायणदेव, व्यंकटमखी, भावभट्ट, सदारंग-अदारंग, शोरी मियां, श्रीनिवास, राजा तुलाजी राव (मध्य काल); मुहम्मद रज़ा, सवाई प्रताप सिंह देव, कृष्णानंद व्यास (उत्तर भारतीय संगीत); त्यागराज, श्याम शास्त्री, सुबराम दीक्षित

(दक्षिण भारतीय संगीत); सुरेन्द्र मोहन टैगोर आदि।

आधुनिक काल के अंतर्गत सन् 1900 से 1947 तक के युग को संगीत शास्त्रियों ने प्रचार-काल की संज्ञा दी है।

इस काल में श्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने संगीत के क्रियात्मक पक्ष (Practical side) और श्री विष्णु नारायण भातखण्डे ने शास्त्र पक्ष (Theory side) पर सराहनीय कार्य किये। इन्होंने शिक्षा-संस्थाओं में संगीत का सुव्यवस्थित पाठ्यक्रम निर्धारित किया और छात्रों को समुचित रूप से संगीत शिक्षा प्राप्त होने लगी। पूना, बम्बई, बंगलौर, ग्वालियर, बड़ौदा, तंजौर, मैसूर, त्रिवेन्द्रम, कलकत्ता, लखनऊ, दिल्ली आदि स्थानों पर संगीत विद्यालयों की स्थापना हुई। रेडियो ओर सिनेमा के माध्यम से संगीत का व्यापक प्रचार हुआ।

'बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध सामाजिक पुनर्जागरण के साथ-साथ संगीत की पुनर्प्रतिष्ठा का भी गवाह रहा है। अत्यंत समृद्ध भारतीय संगीत संक्रमण काल में घरानों, कोठों, रियासतों और देवालयों तक सीमित हो गया था। अभिजात्य समाज अपने बच्चों को संगीत व अन्य कला विषयों से दूर रखना ही श्रेयस्कर मानता था। इन्हीं परिस्थितियों में श्री राधावल्लभ चतुर्वेदी एवं मेरे पिता पं0 रामनारायण मणि त्रिपाठी जैसे कई साहसी युवाओं ने संगीत शिक्षा ग्रहण करने व संगीत सेवा को अपने जीवन का अभीष्ट चुनने का व्रत लिया।

'मैरिस कॉलेज ऑफ़ हिन्दुस्तानी म्यूज़िक' (सम्प्रति भातखंडे संगीत संस्थान सम विश्वविद्यालय), लखनऊ में पं. एस.एन. रातनजनकर 'सुजान' जी से विधिवत शास्त्रीय संगीत का प्रशिक्षण प्राप्त कर, 1940 में संगीत विशारद करके आकाशवाणी लखनऊ में म्यूज़िक कम्पोज़र नियुक्त हुए राधावल्लभ जी ने अवधी लोकसंगीत का विधिवत अध्ययन-मनन किया और फिर उसी में रच-बस गए। एक लम्बी शिष्य परम्परा, एकल, युगल, समूहगान के अनगिनत रचनात्मक प्रयोगों से उन्होंने लखनऊ केन्द्र को एक अलग पहचान दिलायी। संगीत जगत में उनका योगदान अप्रतिम है, उनकी रचनाएं, गीत अमूल्य धरोहर हैं।'

—डॉ. शरदमणि त्रिपाठी

संगीत प्रवीण, गोरखपुर

'सा रे ग म' पुस्तक के अंत में प्रमुख संगीत मनीषियों का संक्षिप्त जीवन परिचय दिया गया है। इनमें शामिल हैं—शारंगदेव, अमीर खुसरो, गोपाल नायक, तानसेन, विष्णु दिगंबर पलुस्कर एवं विष्णु नारायण भातखंडे।

'बेहद हसीन चेहरा उस पर सुनहरी मुस्कान, पान के शौक़ीन। उस पर बतकहियों और लखनवी लन्तरानियों के बादशाह। परम आदरणीय राधावल्लभ चतुर्वेदी का यही खुशमिजाज़ व्यक्तित्व मेरी स्मृति में है। ऐसे मोहक व्यक्तित्व जब तक स्मृतियों में हैं, वो इतिहास नहीं हो सकते। मैं वर्षों उनके सान्निध्य में रहा। यह वह समय था जब उनका डंका बजता था। वे महफ़िलों के आदमी थे। कभी उन्हें भीषण अट्टहास करते हुए नहीं देखा। एक बेहद किफ़ायती मुस्कान ही उन पर फबती थी। उन दिनों उन्हें प्रतिष्ठा ओर लोकप्रियता दोनों प्राप्त थीं।

आकाशवाणी लखनऊ में अवधी संगीत को प्रतिष्ठित करने में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण था। अपने प्रचार-प्रसार से दूर उनका अहंकार विहीन व्यक्तित्व बेहद ओजस्वी और आकर्षक था। कहावतों और मुहावरों के भंडार श्री चतुर्वेदी यारों के यार थे। जहां बैठते महफ़िल जुड़ जाती।

श्री चतुर्वेदी जी का सान्निध्य जब याद आता है तब अपने को गर्वित समझता हूं कि मैंने श्री चतुर्वेदी जी को देखा था। समय बदल जाता है पर यादें नहीं बदलतीं।

—श्री उर्मिल कुमार थपलियाल

वरिष्ठ रंगकर्मी एवं पूर्व समाचार

वाचक, आकाशवाणी, लखनऊ।

'सा रे ग म' पं0 राधवल्लभ चतुर्वेदी का एक Dream project था। जिन तक वह स्वयं नहीं पहुंच पायें, उन तक यह पुस्तक पहुंचे। 57 वर्षों के संक्षिप्त से जीवन में पंडित जी ने अपने समर्पण, लगन, संकल्प और मछली की आंख वेधने के लिए अर्जुन-सी दृष्टि की एकाग्रता के कारण संगीत के क्षेत्र में इतने प्रयोग किये कि एक जीवन में असंभव से लगने वाले कीर्तिमान अपने नाम कर लिए जबकि उनका लक्ष्य न नाम कमाना था, न पैसा और न पुरस्कारों की दौड़ में बने रहना। जिस संघर्ष और साधना के बल पर उन्होंने संगीत के अनखुले रहस्यों को खोला, उसे वह खुले हाथ संगीत प्रेमियों के लिए लुटाते रहे। शास्त्रीय संगीत को जटिल और दुरूह बनाने वाले तत्वों को उन्होंने आसान भाषा और सहज तरीक़े से संक्षेप में 'सा रे ग म' में संजोया। यह किताब किसी Magic box से कम नहीं है क्योंकि सिर्फ़ संगीत के विद्यार्थी ही नहीं, संगीत के जिज्ञासु भी इस किताब की रोचकता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। संगीत के ककहरे का दूसरा नाम है—'सा रे ग म'।

मुझे प्रसन्नता है कि संगीत नाटक अकादेमी, नई दिल्ली ने जो स्वागत और

सम्मान पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी की पुस्तक 'ऊंची अटरिया रंग भरी' को दिया, ठीक उतनी ही तत्परता से 'सा रे ग म' को भी एक बार फिर संगीत प्रेमियों के लिए पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है।

–नीलम चतुर्वेदी
(आत्मजा–स्व. राधावल्लभ चतुर्वेदी)
ई-मेल-chatn.ddk@gmail.com

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
प्रकाशकीय	*(v)*
भूमिका	*(vii)*
1. विषय प्रवेश	1
2. नाद	6
(1) ऊँचा-नीचा होना (Pitch)	
(2) एक ही जगह पर छोटा-बड़ा होना (Intensity)	
(3) जाति अथवा गुण (Quality)	
3. शुद्ध तथा विकृत स्वर	8
4. सप्तक	9
5. श्रुति	11
6. तार की लम्बाई और आन्दोलन-संख्या	13
स्वरों का गुणान्तर, आन्दोलन संख्या से लम्बाई निकालने की विधि, तार की लम्बाई से आन्दोलन-संख्या निकालना, मध्यकालीन स्वर-स्थान, श्रीनिवास के स्वर-स्थान और आन्दोलन-संख्या, शुद्ध स्वरों का स्थान, विकृत स्वरों का स्थान, मध्य-कालीन, आधुनिक और पाश्चात्य स्वर-तुलना, श्रुति-स्वर व्यवस्थानुसार भारतीय संगीत के तीन काल	
7. आलाप	25
8. तान	29
9. मुर्की, कन, कंपन,	33

मींड, गमक, छूट, आरोह-अवरोह, पकड़, 34
वक्र, वादी, समवादी, अनुवादी, विवादी, 35
अंश, न्यास एवं गृह, अल्पत्व, बहुत्व 36
10. रागों का समय-विभाजन 38
संधिप्रकाश राग, शुद्ध रे ध एवं कोमल ग़ नी वर्ग के राग
11. पूर्व राग और उत्तर राग 42
संधिप्रकाश राग, आश्रय राग,
परमेल प्रवेशक
12. थाट 45
व्यंकटमखी की थाट-व्यंजना, थाटों के 5 गुण, 12 स्वरों से 72 थाट निकालने की विधि, उत्तर भारतीय संगीत के 10 थाट
13. रागों की उत्पत्ति 52
रागों की मुख्य 3 जातियाँ, जातियों द्वारा रागों की उत्पत्ति, जातियों से बनने वाले रागों की संख्या
14. उत्तर भारतीय एवं कर्नाटकी संगीत की स्वर तुलना 58
15. तानपूरा 60
तानपूरे के 12 भाग, तानपूरे का मिलाना, मिले हुए तानपूरे की पहचान
16. संगीत में प्रचलित विभिन्न गायन शैलियाँ 65
ध्रुवपद, धमार, ख़्याल, टप्पा, ठुमरी, तराना, सरगम, लक्षण गीत, भजन, तिरवट, चतुरंग, रागमाला, होली
17. प्रमुख रागों की व्याख्या तथा उनके सूक्ष्म आलाप 77
वृन्दावनी सारंग, भीमपलासी, भैरव, केदार, मालकौंस, जौनपुरी, तोड़ी, गौड़-सारंग, मारवा, तिलक-कामोद, पूर्वी, दुर्गा, हमीर, बहार
18. अलंकार (पल्टा) 91
19. उत्तर भारतीय संगीत की कुछ तालें और उनकी विभिन्न लय 95
त्रिताल, झपताल, एकताल, चौताल, धमारताल और इनकी दुगुन, तिगुन तथा चौगुन लय
20. संगीत-कला की उन्नति के लिये विचारणीय विषय 104

21. शास्त्रीय संगीत में गतिरोध और उसके कारण	**109**
22. भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास	**115**
23. संगीत की उत्पत्ति से संबंधित जनश्रुतियाँ	**127**
24. संक्षिप्त जीवन चरित्र	
शारंगदेव	**129**
अमीर खुसरो	**131**
गोपाल नायक	**134**
तानसेन	**137**
विष्णु दिगम्बर पलुस्कर	**143**
विष्णु नारायण भातखंडे	**146**

विषय-प्रवेश

'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते' के अनुसार गीत, वाद्य और नृत्य तीनों परस्पर एकाकार होकर 'संगीत' की परिभाषा का निर्माण करते हैं। सामवेद संगीत का आदि ग्रन्थ है। प्रचलित किंवदंती के अनुसार सर्वप्रथम ब्रह्मा ने सामवेद, ललितकला-जननी सरस्वती को समर्पित किया। सरस्वती ने इस ग्रन्थ को प्रचारार्थ संगीतमुनि नारद को और नारद ने नाट्य-शास्त्र रचयिता भरत मुनि को अर्पित किया। भरत ने नाट्य-शास्त्र में इस आदि-ग्रन्थ की विद्वत्तापूर्ण टीका कर उसे भारत में प्रचारित किया। यह निर्विवाद सत्य है कि आज नाट्य-शास्त्र ही भारतीय संगीत की आधार-शिला है। वास्तव में भरत के उपरान्त समस्त संगीतशास्त्रियों ने उन्हीं के द्वारा प्रतिपादित संगीत की उपरोक्त परिभाषा का अपने-अपने ढंग से प्रतिपादन किया।

संगीत-मनीषी शारंगदेव की अमूल्य कृति "संगीत-रत्नाकर" की निम्नलिखित पंक्तियों के अवलोकन से आपको संगीत की उक्त परिभाषा और स्पष्ट हो जाएगी–

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते।
मार्ग देशी विभागेन संगीतं द्विविधं मतम्।।
मार्गो देशीत तद्द्वेधा तत्र मार्गः स उच्यते।
यो मार्गितो बिरिंच्याद्यैः प्रयुक्तो भरतादिभिः।।
देवस्य पुरतः शंभोर्नियताभ्युदयप्रदः।
देशे देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरंजकम्।।
गानं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्यभिधीयते।।

–संगीत रत्नाकर

अर्थात् गीत, वाद्य तथा नृत्य इन तीनों के समावेश को संगीत कहते हैं। इस संगीत के मार्ग और देशी दो भेद हैं। इन में से मार्ग संगीत वह है जो ब्रह्मा

और भरत आदि मुनियों द्वारा गाया गया तथा जिसका प्रदर्शन भगवान शंकर के सम्मुख भी किया गया। देश-देश में लोक-रुचि के अनुसार जो हृदय को आह्लादित करने वाला गायन, वादन और नृत्य है, वह देशी संगीत कहलाता है।

शारंगदेव लिखित उक्त विचारों का पुष्टीकरण 'संगीत दर्पण' में निम्न प्रकार से किया गया है–

गीतं वाद्यं नर्तनं च त्रयं संगीतमुच्यते।
मार्ग देशी विभागेन संगीतं द्विविधं मतम्।।
द्रुहिणेन यदन्विष्टं प्रयुक्तं भरतेन च।
महादेवस्य पुरतस्तन्मार्गाख्यं विमुक्तिदम्।।
तत्तद्देशस्थया रीत्या यत्स्याल्लोकानुरंजनम्।
देशे देशे तु संगीतं तद्देशीत्यभिधीयते।।

–संगीत दर्पण

'राग-तत्व विबोध' में भी उक्त सिद्धांतों का ही प्रतिपादन किया गया है –

गीतं द्वेधा मार्गो देशी मार्गः स यो विरिंच्याद्यैः।
अन्विष्टो भरताद्यै शंभोरग्रे प्रयुक्तोऽर्च्यः।।
देशे देशे रुच्या यज्जनहृद्रंजनं तु सा देशी।
स तु लोकरुचिविकलितः प्रायोलक्ष्यात्र देशी तत्।।

–राग-तत्व विबोध

संगीत की परिभाषा एवं उसके दो मुख्य भेदों मार्गी और देशी के साथ ही संभवतः पाठकों को यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि ब्रह्मा, भरत आदि द्वारा प्रयुक्त मोक्षदायक संगीत मार्गी और जन-जन में प्रचलित संगीत देशी संगीत है। कवि लालन ने भी निम्न चौपाई में यही बात बड़े सरल ढंग से समझाई है–

ब्रह्मा, भरत, प्रचारेउ जेहिका। परेउ 'मार्गी' नाम सु तेहिका।।
देशहिं देश प्रचार सुहाई। निज रुचि अधुनिक गीत बनाई।।
'देशी' नाम तेहि को सोहै। ऐसो मत सब गुणियन को है।।

इस प्रसंग में यह कहना भी अनुचित न होगा कि गायन, वादन और नृत्य तीनों कलायें एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित तो हैं ही, तथापि इनमें भी गीत का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। गीत की अवतारणा के समय वाद्य का प्रयोग सहायक रूप में होता

है और गाते समय गीत की भावना को व्यक्त करने के लिये गायक के मुख पर गीत के अनुरूप ही भिन्न-भिन्न भाव-भंगिमायें सहज ही देखी जा सकती हैं। गाते समय गायक के हाथ, पैर भी स्वतः ही चलने लगते हैं। इस प्रकार गीत के साथ ही नृत्य भी होता है। अस्तु यह ध्यान देने योग्य है कि वाद्य और नृत्य, गीत के ही पूरक हैं और इसी कारण गीत का स्थान इन तीनों में श्रेष्ठ है।

नाद की उत्पत्ति

गीत नादमय होता है और संगीतोपयोगी नाद को व्यक्त करने वाला वाद्य ही उत्तम वाद्य है। नृत्य भी गीत और वाद्य से युक्त है। अतः यह तीनों ही नाद के अधीन हैं।

'श्री मल्ललक्ष्यसंगीतम्' के अनुसार नाद के द्वारा ही वर्ण की अभिव्यक्ति होती है तथा 'नादाधीन जगतं' के अनुसार अखिल विश्व नाद के अधीन है। नाद ही सम्पूर्ण संगीतशास्त्र का जीवन है। व्यवहार में वह तीन प्रकार का है। हृदय में मंद्र, कण्ठ में मध्य और तालु में तार।

संगीत-शास्त्रियों ने नाद शब्द की विवेचना करते हुए 'ना' का अर्थ प्राण तथा 'द' का अर्थ दकार अथवा अग्नि बताया है और प्राण तथा अग्नि के संयोग से ही नाद की उत्पत्ति बतायी है।

'संगीत दर्पण' के रचयिता ने नाद की उत्पत्ति के विषय में कहा है–

आत्मना प्रेरितं चित्तं वह्निमाहितं देहजम्।
ब्रह्मग्रन्थिस्थितं प्राणं स प्रेरयति पावकः।।
पावकप्रेरितः सोऽथ क्रमादूर्ध्वपथे चरन्।
अतिसूक्ष्मध्वनिं नाभौ हृदि सूक्ष्मं गले पुनः।।
पुष्टं शीर्षे त्वपुष्टं च कृत्रिमं बदने तथा।
आविर्भावयतीत्येवं पंचधा कीर्त्यते बुधैः।।
कथं कंठस्थितः पुष्टः स्यादपुष्टः शिरः स्थितः।
उच्यते तत्र शिरसि संचार्यारोहिवर्णयोः।।
संभूतिनं भवेद्यस्मादपुष्टः शिरसिस्थितः।
नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदुः।।
जातः प्राणाग्निसंयोगान्तेन नादोऽभिधीयते।।

–संगीत दर्पण

अर्थात् आत्मा द्वारा प्रेरित चित्त देहस्थ अग्नि को उद्दीप्त करता है। वही अग्नि ब्रह्मग्रन्थि में स्थित प्राण-वायु को प्रेरित करती है और इस प्रकार अग्नि द्वारा प्रेरित पवन क्रम-पूर्वक ऊपर की ओर संचार करता हुआ अत्यन्त सूक्ष्म ध्वनियों को नाभि, हृदय और कण्ठ से उत्पन्न करता है। शीर्षस्थान में तथा मुख में अपुष्ट और कृत्रिम ध्वनियों का आविर्भाव करता है। विद्वानों ने इसे पाँच प्रकार का माना है। कण्ठ में स्थित पुष्ट तथा शिर में स्थित अपुष्ट नाद होता है। संचारी और आरोही वर्णों में यह अपुष्ट होता है। इससे आगे नाद की उत्पत्ति की और कोई संभावना नहीं होती है तथा यही नाद शिर में स्थित होता है। इसीलिये इसे अपुष्ट कहते हैं। 'ना' का अर्थ प्राण और 'द' का अर्थ अग्नि है। प्राण और अग्नि के संयोग से ही नाद की उत्पत्ति होती है। नाद के विषय में विस्तार पूर्वक आगे लिखा गया है।

सांकेतिक चिन्ह

पुस्तक में प्रयुक्त कुछ सांकेतिक चिन्ह इस प्रकार हैं–

(अ) जिन स्वरों के नीचे बिन्दु दिये हैं उन्हें **'मन्द्र सप्तक'** का स्वर जानना चाहिये। जैसे– ऩी ध़ प़ म़ ग़ ऱे स़ा

(आ) जिन स्वरों पर कोई चिन्ह न हो वे **'मध्य सप्तक'** के स्वर अथवा शुद्ध स्वर हैं। जैसे– सा रे ग म प ध नी

(इ) जिन स्वरों के ऊपर बिन्दु दिये गये हैं वे **'तार सप्तक'** के स्वर हैं। जैसे–सां रें गं मं पं धं नीं

(ई) जिन स्वरों के नीचे पड़ी लकीर हो वे **'कोमल स्वर'** हैं। जैसे– <u>रे</u> <u>ग</u> <u>ध</u> <u>नी</u>

(उ) जिन स्वरों के ऊपर खड़ी लकीर हो वे 'तीव्र स्वर' हैं। जैसे– म॑

(ऊ) जिन स्वरों के नीचे चन्द्राकार चिन्ह हों उन्हें एक मात्रा में जानना चाहिये। जैसे– सारेग रेगमप

(क) **'मींड'** इस प्रकार लिखना शास्त्र-सम्मत है–

प सां नी ग सां प

(ख) जिस स्वर के ऊपर कोई दूसरा स्वर लिखा हो उसे स्वर का कण समझना चाहिये और संगीत में इन्हें अलंकारिक स्वर कहते हैं। जैसे—

प म रें

म नी सां

यहाँ प म रें क्रमशः म नी सां के कण हैं।

(ग) ऽ यह चिन्ह स्वरलिपि के काम में प्रयुक्त होता है। किसी अक्षर को यदि हम एक अथवा उससे अधिक मात्रा का बनाना चाहते हैं तो हम उस अक्षर के आगे, जितनी मात्राएँ बढ़ानी हों, उतनी ही बार इस चिन्ह को लिखेंगे। जैसे 'कल' शब्द में यदि 'क' में 2 मात्राएँ और बढ़ानी हों तो उसे हम 'क ऽ ऽ' इस प्रकार लिखेंगे।

(घ) —उपरोक्त विधि से यदि हम 'सा रे ग म प ध नी सां' में से किसी भी स्वर की मात्रा बढ़ाना चाहें तो उस स्वर के आगे यह चिन्ह जैसे 'रे— —' इस प्रकार प्रयुक्त होगा।

(च) ( ) इस कोष्ठ चिन्ह के भीतर लिखे हुए स्वर का अर्थ यह है कि एक स्वर इसके आगे तथा एक स्वर पीछे का लगाकर इसे एक ही मात्रा में कहा जायेगा। जैसे (प), इसके अर्थ हैं ध प म प, (म) प म ग म

(छ) 0 यह चिन्ह ताल में 'खाली' की जगह बतलाता है।

(ज) × यह चिन्ह ताल में 'सम' की जगह बतलाता है।

(झ) 1, 2, 3, 4 आदि अंक पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी आदि तालों के परिचायक हैं।

(ट) ⊕ ताल में जब 'खाली' और 'सम' एक ही स्थान पर होते हैं तब इस चिन्ह का प्रयोग होता है। स्मरण रखना चाहिये कि इस चिन्ह का प्रयोग केवल रूपक ताल में ही होता है।

(ठ) । । । । ताल में जितने भाग होते हैं उसे लिखते समय इस प्रकार उनके अलग-अलग ख़ाने बनाये जाते हैं।

नाद

प्रगटै वायु नकार सों, अग्नि दकारा सोहि।
वायु-अग्नि के योग सों, उत्पत्ति नाद की होहि।।

—लालन रागमाला

किसी भी प्रकार की आवाज़ को नाद की संज्ञा दी जा सकती है। "आहतोऽनाहतश्चेति द्विधा नादो निगद्यते" के अनुसार नाद के दो भेद हैं:—

(1) अनाहत नाद

(2) आहत नाद

अनाहत नादः- यह नाद बिना किसी संघर्ष के अथवा प्रयत्न के स्वयं उत्पन्न होता है। इसको योगीजन ध्यानावस्थित अवस्था में ही सुन सकते हैं। इसे मुक्तिदायक माना गया है। इसी नाद के विषय में संत-कवि कबीर ने कहा है "कहत कबीर सुनो भई साधो, अनहद बाजे ढोल रे।" किन्तु संगीत के लिए इसका कोई उपयोग नहीं है। अतः संगीतोपयोगी नाद न होने के कारण इसकी चर्चा यहीं समाप्त होती है।

आहत नाद :- किसी के प्रयास एवं संघर्ष से उत्पन्न होने वाली आवाज़ को आहत नाद कहते हैं। यह नाद पशु, पक्षी अथवा प्रकृति और मनुष्यजन्य होता है। संगीत से इस नाद का विशेष संबंध है। इस नाद के दो भेद हैं :—

(1) संगीत-अनुपयोगी

(2) संगीत-उपयोगी

संगीत-अनुपयोगी— ऐसा नाद जिससे अपनी आवाज़ अथवा कोई वाद्ययंत्र न मिलाया जा सके, उसे संगीत-अनुपयोगी नाद कहते हैं। जैसे बादल की गरज, बिजली की कड़क और घोड़े की टाप। इस प्रकार के नादों को केवल शोर-गुल ही कहा जा सकता है।

संगीत-उपयोगी :- ऐसा नाद जिससे अपनी आवाज़ अथवा कोई वाद्य-यंत्र मिला सकें, उसे संगीत-उपयोगी नाद कहते हैं। जैसे कोयल की कुहुक, मोर की पेंहक अथवा वायुयान के प्रोपेलर (पंखे) की आवाज़।

इस नाद के तीन निम्नलिखित भेद किये गये हैं:—

(1) **नाद का ऊँचा-नीचा होना (Pitch) :-** 'सा' से 'रे' अथवा 'सा' से 'नी' स्वर कहना ही स्वर का ऊँचा-नीचापन है। संगीत की भाषा में इसे नाद का ऊँचा-नीचा होना (अर्थात् Pitch) कहते हैं।

(2) **नाद का एक ही जगह पर छोटा-बड़ा होना (Intensity) :-** किसी स्वर को एक ही स्थान पर धीरे से कहना, फिर उसी स्वर को उसी स्थान पर ज़ोर से कहने को ही नाद का एक ही जगह पर छोटा-बड़ा होना (Intensity) कहते हैं। वास्तव में यह आवाज़ के घनत्व (Volume) एवं एक सेकण्ड में होने वाले आन्दोलनों (Vibrations) पर ही निर्भर करता है।

(3) **नाद की जाति अथवा गुण (Quality) :-** यदि समस्त भारतीय वाद्ययंत्रों को एक ही स्वर में मिलाकर एक-एक करके अदृश्य स्थान से छेड़ा जाय तो संगीत का ज्ञाता तुरन्त बता देगा कि अमुक आवाज़ अमुक वाद्ययंत्र की है। नाद के इसी गुण द्वारा हम यह पहचानने में सफल हो जाते हैं कि अमुक आवाज़ किस व्यक्ति विशेष की है। इसी को नाद की जाति अथवा गुण कहते हैं।

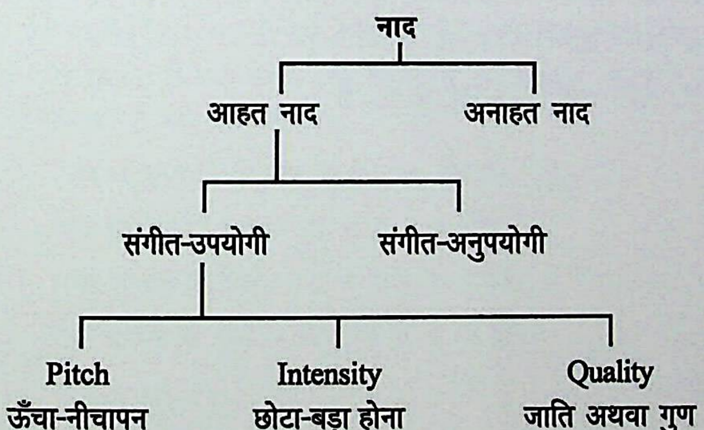

शुद्ध तथा विकृत स्वर

भारतीय संगीत-मनीषियों ने संगीत में शुद्ध और कोमल कुल 12 स्वरों का प्रयोग किया है। स्वरों में षड़ज और पंचम स्वर अचल तथा शेष ऋषभ, गांधार, मध्यम, धैवत एवं निषाद चल स्वर हैं। यही चल स्वर जब अपनी शुद्धावस्था को त्याग देते हैं तो विकृत स्वर कहे जाते हैं।

ऋषभ, गांधार, धैवत और निषाद स्वरों की शुद्धावस्था 'तीव्र' है। अतएव जब इनका प्रयोग 'तीव्र' न होकर कोमल अवस्था में होता है तो यह विकृत स्वर कहलाते हैं। किन्तु मध्यम स्वर की स्थिति ठीक इसके विपरीत है। संगीतशास्त्री कोमल मध्यम को शुद्ध स्वर और तीव्र मध्यम को विकृत स्वर मानते हैं। अर्थात् रे, ग, ध, नी स्वर जब कोमल होते हैं तो विकृत कहलाते हैं और 'म' जब तीव्र होता है तब विकृत कहलाता है।

शुद्ध एवं विकृत स्वर को लिपिबद्ध करते समय निम्न सांकेतिक चिन्हों का प्रयोग करना श्रेयस्कर है–

शुद्ध स्वर– सा, रे, ग, म, प, ध, नी

विकृत स्वर– सा, रे॒, ग॒, म॑, प, ध॒, नी॒

सप्तक

जो ध्वनि मृदु हिरदय सों सोहै। 'मन्द्र' नाम वहिकर अति मोहै।।
कंठ माहिं सों जो स्वर गावै। 'मध्य' नाम धरि सुन्दर भावै।।
तालु माहिं सों जो ध्वनि राजै। 'तार' नाम करि मनहर राजै।।
'मन्द्र' 'मध्य' अरु 'तार' सुहाई। 'सप्तक' नाल क्रमन सों गाई।।

—लालन रागमाला

सात स्वरों के अपने स्वाभाविक क्रमानुसार समूह को 'सप्तक' कहते हैं। जैसे— सा, रे, ग, म, प, ध, नी

सप्तक के तीन भेद हैं- (1) मन्द्र सप्तक
(2) मध्य सप्तक
(3) तार सप्तक

जिस 'सा' से हम गाते हैं उसे छोड़ कर उसके नीचे के स्वरों को मन्द्र सप्तक के स्वर कहेंगे। जिस 'सा' से हम गाते हैं, उसके आगे निषाद स्वर तक के स्वरों को मध्य सप्तक के स्वर कहेंगे और निषाद के ऊपर प्रयोग में आने वाले स्वर 'तार-सप्तक' के स्वर कहे जायेंगे।

विभिन्न सप्तकों के स्वर लिखने का ढंग निम्न है—

मन्द्र सप्तक के स्वर :- ऩी ध़ प़ म़ ग़ ऱे स़ा

मध्य सप्तक के स्वर :- सा रे ग म प ध नी

तार सप्तक के स्वर :- सां रें गं मं पं धं नीं

प्रश्न व अभ्यास

(1) नाद किसे कहते हैं और उसके कितने भेद हैं? तालिका देकर समझाइये।

(2) शुद्ध, विकृत तथा अचल स्वरों से क्या तात्पर्य है? उनकी संख्या पृथक-पृथक बतलाते हुए मध्यम की विशेषता का उल्लेख करें।

(3) सप्तक की परिभाषा, संख्या और उनके सांकेतिक चिन्ह उदाहरण सहित लिखें।

(4) निम्न स्वर-समूह में कौन स्वर किस सप्तक का है तथा वह शुद्ध है अथवा विकृत?

सां, रें, ग̣̱, मं॑, प̣, ध̣̱, नीं̱, सां

(5) निम्नलिखित सांकेतिक चिन्हों का तात्पर्य समझाकर लिखियेः-

नी
ऽ, o, ×, प‿म, ⊕, –, (प), ध, 1, 2, 3, 4

श्रुति

भारतीय संगीत-शास्त्रियों के अनुसार संगीतोपयोगी 22 नाद माने जाते हैं। वैसे तो नाद के असंख्य भेद हो सकते हैं किन्तु शास्त्रानुसार केवल उक्त 22 नाद वाद्ययंत्र अथवा मौखिक संगीत में अलग-अलग सुने जा सकते हैं। इन्हीं 22 नादों को ही श्रुति की संज्ञा दी गयी है।

नित्यं गीतोपयोगित्वमभिज्ञेयत्वमप्युत।
लक्षे प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीत श्रुति लक्षणम्।।

—अभिनव रागमंजरी

अर्थात् वह आवाज़ जो गीत में प्रयोग की जा सके तथा एक दूसरे से अलग व स्पष्ट पहचानी जा सके उसे 'श्रुति' कहते हैं।

"श्रूयते इति श्रुतिः" के अनुसार कानों से स्पष्ट सुनाई देनेवाला नाद ही श्रुति है।

जो ध्वनि परै सुनाई काना, श्रुति नाम तेहि कर मैं जाना।

—लालन रागमाला

संगीतशास्त्रियों ने इन्हीं 22 नादों को सात स्वरों में विभक्त किया है। देखिये-

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड़ज मध्यम पंचमाः।
द्वे द्वे निषाद गांधारौ त्रिस्त्रीरिषभधैवतो।।

—संगीत रत्नाकर

अर्थात् षड़ज, मध्यम और पंचम में चार-चार, निषाद और गांधार में दो-दो तथा ऋषभ और धैवत में तीन-तीन श्रुतियाँ हैं। इस प्रकार यह कुल 22 श्रुतियाँ हुईं जो वाद्ययंत्र पर सरलता से एक-एक कर सुनी जा सकती हैं। सिद्ध गायक

ही इनका प्रदर्शन कर सकता है। वाद्य-यंत्र के एक तार में 22 श्रुतियाँ इस प्रकार हो सकती हैं–

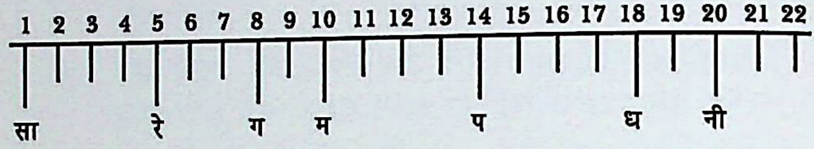

तार की लम्बाई और आन्दोलन-संख्या

तानपूरे अथवा सितार के तार को छेड़ने से तार हिलेगा अर्थात् उसमें आन्दोलन होगा। आन्दोलन से ध्वनि उत्पन्न होगी। यदि आन्दोलनों की संख्या अधिक होगी तो नाद (ध्वनि) भी उतना ही ऊँचा होगा, और यदि आन्दोलनों की संख्या कम होगी तो नाद उतना ही नीचा होगा। अतः नाद का ऊँचा-नीचा होना आन्दोलन-संख्या के अधिक या कम होने पर ही निर्भर है।

आन्दोलन-संख्या की तरह ही तार की लम्बाई पर भी नाद का ऊँचा-नीचा होना निर्भर करता है। तार की लम्बाई जितनी अधिक होगी, नाद या स्वर उतना ही नीचा होगा और तार की लम्बाई जितनी कम होगी नाद या स्वर उतना ही ऊँचा होगा। इस प्रकार आन्दोलन संख्या और तार की लम्बाई में परस्पर विरोधाभास स्पष्ट है। एक ओर स्वर ऊँचा होने से तार की लम्बाई घटती है और दूसरी ओर स्वर ऊँचा होने से आन्दोलन-संख्या बढ़ती है।

स्वरों का गुणांतर

दो स्वरों से उत्पन्न आंदोलन-संख्याओं के भजनफल को उनका गुणांतर कहते हैं। उदाहरणार्थ यदि एक सेकेण्ड में 'सा' की आन्दोलन-संख्या 240 मान ली जाय और पंचम की आन्दोलन-संख्या 360 मान ली जाय तो 'सा' और 'प' का गुणांतर, उक्त दोनों संख्याओं में से, बड़ी संख्या से छोटी संख्या को भाग देकर निकालेंगे।

अतः षड़ज और पंचम स्वरों का गुणांतर होगा $\frac{360}{240}=\frac{3}{2}$

इसी प्रकार यदि तार-षड़ज की आन्दोलन-संख्या 480 और मध्य-षड़ज की आन्दोलन-संख्या 240 है तो दोनों स्वरों का गुणांतर होगा $\frac{480}{240}=\frac{2}{1}$ अर्थात् दूनी

ऊँचाई। अर्थात् तार 'सां' की ऊँचाई मध्य 'सा' से द्विगुण है।

जिस प्रकार दो आन्दोलन-संख्याओं के भाग देने से गुणांतर निकल आता है उसी प्रकार तार में स्वरों द्वारा उत्पन्न दो लम्बाइयों को भाग देने से भी गुणांतर निकाला जा सकता है। हम ऊपर कह चुके हैं कि आन्दोलन-संख्या और तार की लम्बाई में परस्पर विरोधी भाव है। अतः तार की लम्बाई से गुणांतर निकालने के लिये, अन्य स्वरों की लम्बाइयों से षड़ज स्वर की लम्बाई को विभाजित करेंगे अर्थात् षड़ज की लम्बाई, उस लम्बाई से जिसका गुणांतर निकालना है, सदा ऊपर रहेगी। उदाहरणार्थ 'सा' स्वर की लम्बाई 36'' और 'प' स्वर की लम्बाई 24'' हो तो पंचम स्वर का गुणांतर होगा $\frac{36''}{24''}=\frac{3}{2}$। इसी प्रकार यदि तार-षड़ज की लम्बाई 18'' है और मध्य-षड़ज की लम्बाई 36'' है तो तार 'सा' का गुणांतर $\frac{36''}{18''}=\frac{2}{1}$ होगा। स्मरण रहे कि प्रत्येक स्वर का गुणांतर मध्य षड़ज के साथ ही होगा। अगर $\frac{3}{4}$ मध्यम स्वर का गुणांतर माना जाय तो स्पष्ट है कि 'म' स्वर का गुणांतर 'सा' के साथ हुआ है।

आन्दोलन-संख्या से लम्बाई निकालने की विधि

यदि दो स्वरों की आन्दोलन संख्यायें अलग-अलग दी हों तो उनकी लम्बाई सरलता से निकाली जा सकती है। यदि इन दो स्वरों में से एक की लम्बाई दी हो तो पहले गुणांतर निकालने के पश्चात् उससे नीचे दी हुई स्वर की लम्बाई को भाग दे देंगे और दूसरे स्वर की लम्बाई निकाल लेंगे।

देखिये, यदि षड़ज के तार की लम्बाई 36'' तथा आन्दोलन-संख्या 240 हो और मध्यम स्वर की आन्दोलन संख्या 320 दी हो तो मध्यम स्वर की लम्बाई निम्न प्रकार से निकल आयेगी–

$$\text{मध्यम स्वर का गुणांतर} = \frac{\text{मध्यम की आंदोलन-संख्या}}{\text{षड़ज की आंदोलन-संख्या}} = \frac{320}{240} = \frac{4}{3}$$

$$\text{मध्यम स्वर की लम्बाई} = \text{षड़ज की लम्बाई} \div \frac{4}{3} = 36'' \times \frac{3}{4} = 27''।$$

अतः मध्यम स्वर की लम्बाई = 27"।

वैसे हम तार की लम्बाई और आन्दोलन-संख्या किसी भी परिमाण में मान

सकते हैं किन्तु सुविधा के लिये तार की लम्बाई 36'' और आन्दोलन-संख्या 240 मानकर ही विषय को समझाने का प्रयास करेंगे। पाठकों की सुविधा के लिये निम्न प्रश्नोत्तरों से विषय को समझने में सरलता होगी।

प्रश्नः—300 आन्दोलन-संख्या वाले स्वर के तार की लम्बाई निकालिये।

उत्तरः—'सा' स्वर की लम्बाई 36'' तथा 'सा' की आन्दोलन-संख्या 240। अब जिस स्वर की लम्बाई निकालनी है उसका गुणांतर = $\frac{300}{240} = \frac{5}{4}$; अतएव इस स्वर की लम्बाई निकालने के लिए षड़ज की लम्बाई को $\frac{5}{4}$ से भाग दे देंगे।

इस प्रकार $36'' \div \frac{5}{4} = 36 \times \frac{4}{5} = 28\frac{4''}{5}$

अतः 300 आन्दोलन-संख्या वाले तार की लम्बाई $28\frac{4''}{5}$ होगी।

तार की लम्बाई से आन्दोलन-संख्या निकालना

यदि दो स्वरों की लम्बाइयाँ और नीचे वाले स्वर की आन्दोलन-संख्या भी दी हों तो दूसरे स्वर की आन्दोलन-संख्या निकालने के लिये सर्वप्रथम उसका गुणांतर निकालेंगे। तत्पश्चात् गुणांतर द्वारा निकली हुई आन्दोलन-संख्या को गुणा करेंगे। इससे दूसरे स्वर की आन्दोलन-संख्या निकल आयेगी । निम्न प्रश्नोत्तर में आप इसे सरलता पूर्वक समझ सकेंगे।

प्रश्नः— यदि निषाद स्वर की लम्बाई $19\frac{1''}{5}$ है तो उसकी आन्दोलन-संख्या निकालिये।

उत्तरः— 'सा' स्वर की लम्बाई 36''

'सा' स्वर की आन्दोलन-संख्या 240

अतः 'नी' स्वर का गुणांतर = $\frac{36''}{19\frac{1}{5}} = \frac{36''}{\frac{96}{5}}$

$= \frac{36 \times 5}{96} = \frac{15}{8}$

अतः निषाद की आन्दोलन-संख्या = $240 \times \frac{15}{8} = 450$

मध्यकालीन स्वर-स्थान

संगीतशास्त्रियों के मतानुसार संगीत के इतिहास का मध्यकाल 14वीं से 18वीं शताब्दी तक माना जाता है। इस काल में संगीत के कुछ विशिष्ट संगीतमनीषी भी अवतरित हुए जिनमें पं. अहोबल, श्री श्रीनिवास, लोचन कवि और पं. हृदयनारायण देव का नाम आदर से लिया जाता है। इनकी विशेष चर्चा हम आगे करेंगे।

संगीत-जगत में 17वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में सर्वप्रथम पं. अहोबल ने शुद्ध और विकृत 12 स्वरों के स्वर-स्थान वीणा के तार पर निश्चित किये। उन्होंने वीणा के तार पर बारहों स्वरों की लम्बाई निकाली। कालांतर में 18वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में श्री श्रीनिवास और पं. हृदयनारायण देव ने भी अहोबल के सिद्धांतानुसार ही उसी विधि से, किन्तु अधिक सुनिश्चित और सुव्यवस्थित ढंग से, वीणा के तारों पर शुद्ध व विकृत 12 स्वरों की लम्बाई स्थिर की। यहाँ हम श्रीनिवास द्वारा वीणा के तार पर निश्चित स्वरों की लम्बाई और उनके निकालने की विधि का उल्लेख करेंगे।

श्रीनिवास के स्वर-स्थान

श्रीनिवासरचित 'राग-तत्व विबोध' के अनुसार वीणा के तार की लम्बाई 36'' मान लीजिये। इस 36'' लम्बे तार को बाँधने के पश्चात् ही श्रीनिवास ने एक-एक कर के शुद्ध व विकृत 12 स्वरों के परदे बाँधने की विधि बताई है।

श्रीनिवास के अनुसार पूर्वमेरु (घुड़च अथवा जवारी) और उत्तरमेरु के ठीक बीचो-बीच तार-षड़ज स्वर स्थित है। अतः आप भी पूरे तार की लम्बाई 36'' के आधे अर्थात् 18'' पर तार 'सा' का पर्दा बाँध लीजिये।

स्मरण रहे कि श्रीनिवास के अनुसार तार की लम्बाई पूर्वमेरु से नापी जायेगी क्योंकि मिजराब अपने घात-प्रतिघात उसी स्थान से आरम्भ करती है। मिजराब के एक घात से जितना तार गूँजता है, उतने ही तार की लम्बाई निकालनी चाहिये। सुविधा के लिये यहाँ पहले श्रीनिवास के अनुसार प्रत्येक स्वर के तार की लम्बाई और उनकी आन्दोलन-संख्या दी जा रही है। तत्पश्चात् उनके निकालने की विधि बताई जायेगी।

श्रीनिवास के स्वर-स्थान और आन्दोलन संख्या

शुद्ध स्वर

क्रम सं.	स्वर	तार की लम्बाई	आन्दोलन संख्या
1	षड़ज (सा)	36''	240
2	ऋृषभ (रे)	32''	270
3	गांधार (ग)	30''	288
4	मध्यम (म)	27''	320
5	पंचम (प)	24''	360
6	धैवत (ध)	$21\frac{1''}{3}$	405
7	निषाद (नी)	20''	432
8	तार षड़ज (सां)	18''	480

विकृत स्वर

क्रम सं.	स्वर	तार की लम्बाई	आन्दोलन संख्या
1	कोमल ऋषभ (रे॒)	$33\frac{1''}{3}$	$259\frac{4}{5}$
2	कोमल धैवत (ध॒)	$22\frac{2''}{9}$	$388\frac{4}{5}$
3	तीव्रतर मध्यम (मं)	$25\frac{1''}{9}$	$344\frac{8}{113}$
4	तीव्र गांधार (गं)	$28\frac{2''}{3}$	$301\frac{17}{43}$
5	तीव्र निषाद (नीं)	$19\frac{1''}{9}$	$452\frac{4}{43}$

श्रीनिवास द्वारा स्थापित स्वरों की लम्बाई और आन्दोलन-संख्या जान लेने के पश्चात् इन स्वरों की तारों पर लम्बाई निकालने की विधि से अवगत होना भी आवश्यक है। पहले हम तार 'सां' स्वर की लम्बाई 18" निश्चित कर, उसके निकालने की विधि भी बता चुके हैं। शेष स्वरों की वीणा के तार पर लम्बाई निम्न विधि से निकाली जायेगी।

शुद्ध स्वरों का स्थान

श्रीनिवास ने वीणा के तार पर शुद्ध स्वरों की स्थापना इस प्रकार की है। जैसा आगे दिये वीणा के चित्र में दिखाया गया है, मेरु और घुड़च के बीच के तार की लम्बाई 36 इंच स्थिर की गई है।

इस 36 इंच पूरे तार को छेड़ने से 'मध्य सा' स्वर उत्पन्न होता है। पूरे तार के ठीक बीच में अर्थात् 18 इंच पर तार सप्तक 'सां' का स्थान निकलेगा। इस प्रकार पूरे तार के दो भाग होंगे। घुड़च से 'तार सां' तक के भाग को हम पूर्व भाग तथा 'तार सां' से मेरु तक के भाग को उत्तर भाग मानेंगे।

अब सर्वप्रथम, उत्तर भाग जो 18" लम्बा है उसके दो बराबर भाग करें तो हर भाग 9" का होगा। इनमें से एक भाग को पूर्वभाग के तार की लम्बाई में जोड़ दें तो 18" + 9" = 27" पर मध्यम 'म' का स्थान होगा।

अब फिर उत्तर भाग को तीन बराबर भागों में बांटेंगे। हर भाग 6" लम्बा होगा। इनमें से एक भाग को पूर्व भाग के तार की लम्बाई में जोड़ देने से पंचम 'प' का स्थान स्थिर होगा। इस प्रकार यह स्थान 18" + 6" = 24" पर होगा।

पंचम तथा मेरु का अन्तर 12" है। उसे दो भागों में बाँटने से प्रत्येक भाग 6" का होगा। इनमें से एक भाग को पंचम के तार की लम्बाई, जो 24" है, में जोड़ने से 24" + 6" = 30" पर गांधार 'ग' का स्थान निकल आयेगा।

अब पंचम और मेरु के मध्य के 12" तार को तीन बराबर भागों में बाँटेंगे। हर भाग 4" का होगा। यदि पंचम के तार की लम्बाई में इनमें से दो भाग जोड़ दें (यथा 24" + 4" + 4" = 32") तो 32" पर ऋषभ 'रे' का स्थान निश्चित होगा।

धैवत 'ध' का स्थान, श्रीनिवास के अनुसार, 'पंचम' और 'तार सां' के बीच में होता है। इस प्रकार ठीक बीच में अर्थात् 21" पर धैवत का स्थान आना चाहिये। किन्तु इस स्थान पर धैवत लगाने से 'षड़ज-पंचम भाव' से बेसुरा निकलता है। यहाँ पर 'षड़ज-पंचम भाव' का अर्थ यह है कि जितनी दूरी 'सा' और 'प' में है,

उतनी ही 'रे' और 'ध', 'ग' और 'नी', 'म' और 'सां' में होनी चाहिये। इस आधार पर धैवत का स्थान निश्चित करने के लिये यह ध्यान में रखना होगा कि जितनी दूरी 'सा' और 'प' में है उतनी ही 'रे' और 'ध' की है या नहीं। इसलिये 'रे' को 'सा' मानकर गणित द्वारा धैवत का स्थान इस प्रकार निकालेंगे—

जब कि 'सा' है 36'' तो 'प' है 24''

„ „ „ „ 1'' „ „ „ $\frac{24''}{36}$

इसलिये „ रे „ 32'' „ „ „ $\frac{24}{36}\times 32$

$= 21\frac{1''}{3}$ धैवत का स्थान

अब निषाद 'नी' का स्थान निश्चित करेंगे। 'पंचम' तथा 'तार सां' के बीच के तार को, जो 6'' का है, तीन बराबर भागों में बाँटने से प्रत्येक भाग 2'' का होगा। इनमें से एक भाग 'तार सां' की लम्बाई में जोड़ देने से, 18'' + 2'' = 20'' पर 'नी' का स्थान होगा।*

कोमल धैवत 'ध॒'—यहाँ पर फिर 'रे॒' को 'सा' मान कर, षड़ज-पंचम भाव द्वारा कोमल ध॒ का स्थान निकालना होगा। इस प्रकार देखें—

जब 'सा' है 36'' तो 'प' है 24''

∴ „ „ „ 1'' „ „ „ $\frac{24''}{36}$

∴ „ रे॒ „ $33\frac{1''}{3}$ „ „ „ $\frac{24}{36}\times\frac{100}{3}=\frac{200''}{9}$

$22\frac{2''}{9}$ 'ध॒' की लम्बाई।

तीव्र निषाद 'नीं'—इसका स्थान भी तीव्र 'गं' को 'सा' मानकर षड़ज-पंचम भाव द्वारा ही निकालना होगा।

---

* श्रीनिवास द्वारा स्थिर सातों शुद्ध स्वरों की लम्बाई पीछे पृष्ठ सं. 17 पर दी गयी तालिका में स्पष्ट समझाई गई है। आधुनिक मतानुसार यह काफ़ी थाट है।

वीणा के तारों पर स्वरों की स्थापना

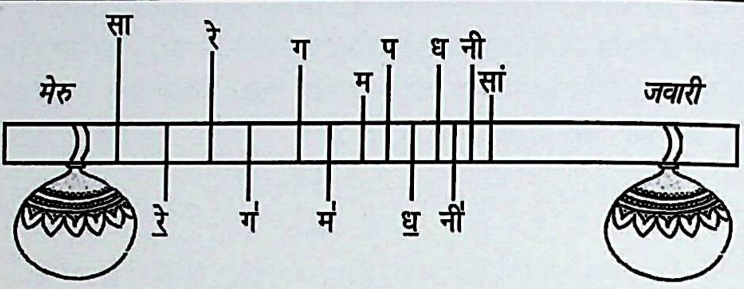

शुद्ध स्वर

सा	36''	प	24''
रे	32''	ध	$21\frac{1''}{3}$
ग	30''	नी	20''
म	27''	सां	18''

विकृत स्वर

रे̱	$33\frac{1''}{3}$
ग॑	$28\frac{2''}{3}$
म॑	$25\frac{1''}{9}$
ध̱	$22\frac{2''}{9}$
नीं	$19\frac{1''}{9}$

जब 'सा' है 36'' तो 'प' है 24''

$\therefore$,, ,, ,, 1'' ,, ,, ,, $\frac{24''}{36}$

$\therefore$,, 'गं' ,, $28\frac{2}{3}$,, ,, ,, $\frac{24}{36}\times\frac{86}{3}=\frac{172''}{9}$

$= 19\frac{1''}{9}$ पर तीव्र नीं का स्थान हुआ।

श्रीनिवास द्वारा निश्चित विकृत स्वरों की लम्बाई पीछे पृष्ठ-संख्या 17 पर एक तालिका में दी गई है।

स्व. पं. विष्णु नारायण भातखण्डे ने भी अपने ग्रंथ 'अभिनव रागमंजरी' में शुद्ध व विकृत 12 स्वरों की स्थापना वीणा के तारों पर की है। उन्होंने श्रीनिवास के सभी स्वर-स्थान वैसे ही माने हैं। केवल <u>रे</u>, <u>ध</u> और मं के स्थानों में कुछ परिवर्तन किया है। वह निम्न प्रकार से है—

कोमल रिषभ '<u>रे</u>'— इसका स्थान शुद्ध रे और मेरु के ठीक मध्य में अर्थात् 32'' + 2'' = 34'' पर निश्चित किया है।

तीव्र मध्यम मं—शुद्ध मध्यम और पंचम के ठीक मध्य में अर्थात् $25\frac{1''}{2}$ पर तीव्र मं का स्थान होगा।

कोमल धैवत '<u>ध</u>'—इसका स्थान षड़ज-पंचम भाव द्वारा स्थिर किया गया है। वह इस प्रकार होगा—

जब 'सा' है 36'' तो 'प' है 24''

$\therefore$,, ,, ,, 1'' ,, ,, ,, $\frac{24''}{36}$

$\therefore$,, <u>रे</u> ,, 34'' ,, ,, ,, $\frac{24}{36}\times 34=\frac{68''}{3}$

$= 22\frac{2''}{3}$ पर कोमल '<u>ध</u>' का स्थान हुआ।

मध्यकालीन, आधुनिक और पाश्चात्य स्वर-तुलना

मध्यकालीन, आधुनिक एवं पाश्चात्य स्वरों की तुलनात्मक विवेचना से निम्न बातों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है–

(1) कि मध्यकाल (15वीं से 18वीं शताब्दी) का शुद्ध थाट अथवा सप्तक वर्तमान काल में काफ़ी थाट माना जाता है। अर्थात् मध्यकाल के शुद्ध 'ग' और 'नी' आज के कोमल ग़ु और नी़ माने जाते हैं।

(2) कि भारतीय और पाश्चात्य स्वर-स्थानों में अत्यधिक साम्य है एवं मध्यकाल के स्वरों तथा पाश्चात्य स्वरों में पर्याप्त एकरूपता है।

(3) कि पाश्चात्य संगीत में षड़ज-पंचम भाव का कोई स्थान नहीं है। उक्त स्वरों की तुलना नीचे दी हुई तालिका से स्पष्ट हो जायेगी।

मध्यकालीन, आधुनिक व पाश्चात्य स्वरों की तुलना

		श्रीनिवास के स्वर		*मंजरीकार के स्वर*		*पाश्चात्य स्वर*
	स्वर नाम	*तार की लंबाई*	*आन्दोलन संख्या*	*तार की लम्बाई*	*आन्दोलन संख्या*	*आन्दोलन संख्या*
1	शुद्ध सा	36 इंच	240	36 इंच	240	240
2	„ रे	32 "	270	32 "	270	270
3	„ ग	30 "	288	$28\frac{2''}{3}$	$301\frac{17}{43}$	300
4	„ म	27 "	320	27 "	320	320
5	„ प	24 "	360	24 "	360	360
6	„ ध	$21\frac{1''}{3}$	405	$21\frac{1''}{3}$	405	400
7	„ नी	20 "	432	$19\frac{1''}{9}$	$452\frac{4}{43}$	450

	स्वर नाम	श्रीनिवास के स्वर		मंजरीकार के स्वर		पाश्चात्य स्वर
		तार की लंबाई	आन्दोलन संख्या	तार की लम्बाई	आन्दोलन संख्या	आन्दोलन संख्या
8	कोमल रे	$33\frac{1''}{3}$	$259\frac{1}{5}$	34 "	$254\frac{2}{17}$	256
9	कोमल ध	$22\frac{2''}{9}$	$388\frac{4}{5}$	$22\frac{2''}{3}$	$381\frac{4}{17}$	384
10	विकृत म	$25\frac{1''}{9}$ तीव्रतर	$344\frac{8}{113}$	$25\frac{1''}{2}$ तीव्र	$338\frac{14}{17}$	$337\frac{1}{2}$
11	" ग	$28\frac{2''}{7}$ (तीव्र)	$301\frac{17}{43}$	30 " कोमल	288	288
12	" नी	$19\frac{1''}{9}$ (तीव्र)	$452\frac{4}{43}$	20 " कोमल	432	432

श्रुति-स्वर व्यवस्थानुसार भारतीय संगीत के तीन काल

श्रुति-स्वर व्यवस्थानुसार भारतीय शास्त्रीय संगीत को प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है। उक्त कालों में हुए संगीतशास्त्री और उनकी कृतियों के संबंध में यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है–

प्राचीन काल (13 वीं शताब्दी तक)– इस काल में भरत और शारंगदेव दो प्रमुख संगीताचार्य अवतरित हुए। इन्होंने क्रमशः 'नाट्य-शास्त्र' एवं 'संगीत रत्नाकर' की रचना की। यह दोनों ग्रन्थ आज भी भारतीय संगीत की आधार-शिला हैं और संगीत-संसार की मूल्यवान निधि हैं।

उक्त दोनों ग्रंथकार सप्तक के अन्तर्गत कुल 22 श्रुतियाँ ही मानते थे। दोनों ने इन श्रुतियों का विभाजन भी एक ही ढंग से किया है और सभी श्रुतियों का अन्तर समान माना है। इनके अनुसार षड़ज, मध्यम और पंचम की 4-4, निषाद और गांधार की 2-2, ऋषभ और धैवत की 3-3 श्रुतियाँ हैं।

मध्यकाल (14वीं-18वीं शताब्दी)—इस काल के निम्नलिखित संगीतशास्त्री उल्लेखनीय हैं—

	नाम	काल	रचना
1.	लोचन कवि	(15वीं शताब्दी)	राग तरंगिणी
2.	अहोबल	(17वीं शताब्दी, पूर्वाधं)	संगीत-पारिजात
3.	हृदयनारायण देव	(17वीं शताब्दी, उत्तराधं)	हृदय-कौतुक, हृदयप्रकाश
4.	श्रीनिवास	(18वीं शताब्दी, पूर्वाधं)	राग-तत्व विबोध

इस काल के समस्त संगीत-शास्त्री स्वर-श्रुति विभाजन, प्राचीन काल के विद्वानों की भाँति ही मानते थे तथा इनके अनुसार स्वर-स्थापना अंतिम श्रुति पर थी।

यह आचार्य श्रुतियों की दूरी षड़ज-पंचम भाव के आधार पर मानते थे, जब कि प्राचीन काल के आचार्य श्रुतियों की दूरी समान मानते थे।

आधुनिक काल (19वीं शताब्दी से आज तक)—स्व. पं. विष्णु नारायण भातखण्डे को इस काल का प्रमुख संगीतशास्त्री माना जा सकता है। 'अभिनव रागमंजरी' तथा 'लक्ष्य संगीत' भातखण्डे जी विरचित प्रमुख ग्रंथ हैं।

भातखण्डे जी स्वर-स्थान प्रथम श्रुति पर मानते हैं जब कि प्राचीन और मध्यकाल में स्वर-स्थान अंतिम श्रुति पर माना जाता था।

प्रश्न व अभ्यास

(1) श्रुतियाँ कुल कितनी हैं और वे सात स्वरों में किस प्रकार बाँटी गयी हैं? एक तालिका देकर समझाइये।

(2) यदि किसी स्वर की आन्दोलन-संख्या मालूम हो तो उससे तार की लम्बाई कैसे निकाली जायेगी?

(3) धैवत का स्थान निश्चित करने की क्या विधि है? उदाहरण देकर समझाइये।

(4) श्रीनिवास और मंजरीकार के स्वरों की तुलना कीजिये।

(5) यदि किसी स्वर की आन्दोलन-संख्या 400 है, तो उसके तार की लम्बाई बताइये।

(6) मंजरीकार के स्वरों की आन्दोलन-संख्या लिखिये।

(7) तार की लम्बाई और आन्दोलन-संख्या का विरोधाभाव उदाहरण सहित समझाइये।

आलाप

राग के स्वर-विस्तार को ही 'आलाप' कहते हैं। गायन में ग्रह, अंश, मन्द्र, तार, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाड़वत्व, ओड़वत्व इन 10 कलाओं का स्पष्ट रूप से दिग्दर्शन ही आलाप-गायन में कराया जाता था। इन कलाओं का विवरण आगे प्रस्तुत किया जायेगा।

आधुनिक समय में दो प्रकार के आलाप प्रचलित हैं–

(1) ध्रुपदांग आलाप

(2) ख्यालांग आलाप

ध्रुपदांग आलाप– इसे 'नोम तोम' के आलाप की संज्ञा भी दी गयी है। इसमें ने, ते, री, रे, नोम, तं, न इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। संगीतज्ञ इस प्रकार के आलाप को विलम्बित, मध्य और द्रुत तीनों लयों में गाते हैं। आलापचारी का यह ढंग प्रभावशाली और आकर्षक है। ध्रुपद और धमार के गायक अधिकतर इसी ढंग की आलापचारी प्रयोग में लाते हैं।

जिज्ञासु पाठकों के मस्तिष्क में उक्त ने, ते, री, नोम, तोम आदि शब्दों के अर्थ जानने की भी जिज्ञासा अवश्य होगी।

वास्तव में उक्त शब्द शुद्ध शब्दों के विकृत रूप हैं। किंवदन्ती है कि प्राचीन समय में संगीत-साधक अभ्यास के पूर्व ईश्वरोपासना हेतु "ओइम् अनन्त हरि नारायण" अथवा "तू ही अनन्त हरि" आदि शब्दों की अवतारणा करते-करते उसी में लीन हो जाते थे, इससे जिस राग का वे अभ्यास करते थे, वह राग मूर्तरूप में गायक के सम्मुख उपस्थित हो जाता था। तत्पश्चात् गायक संबंधित राग के ध्रुपद अथवा धमार को गाता था। कालांतर में मुस्लिम गायक संस्कृत एवं हिन्दी से अनभिज्ञ होने के कारण उन शब्दों का उपयोग सही ढंग से न कर सके। किन्तु वे आलापचारी की इस शैली पर आसक्त हो चुके थे। अतः उन्होंने उसे आत्मसात्

करने का प्रयत्न किया। इसमें उन्होंने शैली को तो अपना लिया और शब्दों का विकृत रूप ही प्रयोग में लाने लगे। उसी के फलस्वरूप नोम, तोम, ने, ते, नी, रे आदि शब्दों का चलन संगीत में प्रारम्भ हुआ।

ख्यालांग आलाप—ख्यालांग आलाप और ध्रुपदांग आलाप में विशेष अंतर यह है कि ध्रुपदांग आलाप बंदिश गाने के पहले आरम्भ होती है। इसके विपरीत ख्यालांग आलाप ख्याल की बंदिश गाने के बाद आरम्भ होती है।

इसके दो भाग हैं:—

(अ) अकार की आलाप

(आ) बोल की आलाप

अकार की आलाप—राग के 'स्वरों' का 'अकार' द्वारा नियमानुसार धीरे-धीरे प्रसार (बढ़त) 'अकार की आलाप' कहा जाता है।

बोल की आलाप—बंदिश के बोलों को लेकर रागानुसार प्रसार (बढ़त) करने को 'बोल की आलाप' कहते हैं।

प्राचीन काल में शारंगदेव के समय में प्रबन्ध-गायन का प्रचार था। हम ऊपर कह चुके हैं कि उस समय में भी आलापचारी का चलन था। उस समय में आलाप के विभिन्न रूप इस प्रकार थे:—

(1) रूपकालाप

(2) जातिकालाप

(3) आविर्भाव-तिरोभाव

(4) मुखचालन

(5) आलप्ति

(6) आक्षिप्तिका

(7) स्वस्थान नियम

रूपकालाप—आलाप की इस शैली का चलन आजकल नहीं के बराबर है। प्राचीन काल में गायक रूपकालाप का प्रयोग करते थे। इस आलाप के प्रदर्शन के समय ऐसा प्रतीत होता था कि गायक किसी आक्षिप्तिका (बंदिश) का प्रदर्शन कर रहा है। इसके प्रदर्शन में आलाप में ही स्थायी, अंतरा, संचारी एवं आभोग स्पष्ट अलग-अलग परिलक्षित होते थे। इसी कारण इस आलाप को शब्दहीन बंदिश की संज्ञा दी गयी है।

जातिकालाप—जब आलापचारी से किसी राग विशेष की जाति का स्पष्ट दिग्दर्शन होता हो अथवा किसी राग विशेष में लगनेवाले एवं वर्जित स्वरों का स्पष्ट

प्रयोग हो तो उसे जातिकालाप कहा जायेगा।

आविर्भाव-तिरोभावः–

ऐसे गायन में जबहिं, राग घोर ढँक जाय।
तबहिं गुणीजन कहत हैं, 'तिरोभाव' अब आय।।
जबहिं पुनः स्पष्ट ह्वै, होय राग निज रूप।
'आविर्भाव' तब होत है, मत यह गायन-भूप।।

–लालन रागमाला

जब गायक, किसी राग विशेष को गाते-गाते, जान बूझकर तत्क्षण अपने राग को उस राग के समप्रकृति वाले किसी अन्य राग में बदल देता है तो संगीत की भाषा में इसी क्रिया को 'तिरोभाव' कहते हैं।

किन्तु गायक जब पुनः उस समप्रकृति वाले राग को छोड़ कर अपने उसी पूर्व राग में जिसमें उसने गायन आरम्भ किया था, आ जाता है तो इस क्रिया को गायन में 'आविर्भाव' कहा जाता है।

मुखचालन–

रागोचित गमकादि को, अरु विविधालंकार।
होय प्रयोग गान महिं, नाम 'मुखचालन' धार।।

राग में विविध गमकादिक अलंकारों के उचित प्रयोग को आलाप में 'मुखचालन' कहते हैं।

आलप्ति–आविर्भाव-तिरोभाव करते हुए राग को पूर्णरूप से प्रदर्शित करना ही आलप्ति है।

आक्षिप्तिका–

ताल स्वरै अरु बोल को, होय गान महिं योग।
'कहि आक्षिप्तिका' वाहि को, यह मत गुणियन लोग।।

गायन में ताल, स्वर और शब्द (बोल) के समावेश को आक्षिप्तिका (बंदिश) कहते हैं। संगीत-ग्रंथों में दी हुई गायन योग्य प्रत्येक 'चीज़' को आक्षिप्तिका अथवा बंदिश कह सकते हैं।

स्वस्थान नियम :–

सुन्दर ढंग 'आलाप' प्रकारा। समय पुरातन रह्यो प्रचारा।
वहै ढंग 'स्वस्थान' कहावै। ऐंसो गुणिजन भेद बतावै।।

'स्वस्थान नियम' गायन का एक प्राचीन प्रकार है। प्राचीन काल में गायन में स्वस्थानों का प्रयोग परमावश्यक माना जाता था। वादीस्वर को स्थायी-स्वर कहते थे। स्थायी स्वर के आगे चौथे स्वर को 'द्वर्ध-स्वर' कहते थे। यही द्वर्ध स्वर प्रथम स्वस्थान था। वादी स्वर से आठवें स्वर को द्विगुण स्वर कहते थे और यह तृतीय स्वस्थान था। द्वर्ध स्वर तथा द्विगुण स्वर के बीच के स्वरों को अर्धस्थित स्वर कहते थे और इसे द्वितीय स्वस्थान कहा जाता था। आलाप में स्वस्थान नियम के अनुसार 'प्रथम स्वस्थान' में गायक अपने आलाप को द्वर्ध स्वर तक, द्वितीय स्वस्थान में अर्धस्थित स्वर तक तथा तृतीय स्वस्थान में द्विगुण स्वर तक ही ले जा सकते थे। आजकल स्वस्थान नियम का प्रयोग नहीं के बराबर है।

तान

संस्कृत की 'तन्' धातु से तान शब्द की उत्पत्ति हुई। किसी वस्तु के तानने या विस्तार करने को ही 'तान' कहते हैं। संगीत में विभिन्न स्वर-समूहों के जल्दी-जल्दी विस्तार करने को 'तान' कहा जाता है।

तानें कई प्रकार की होती हैं–

(1) **अकार की तान**–स्वरों के जल्दी-जल्दी, क्रम-बद्ध अकार द्वारा विस्तार को अकार की तान कहा जाता है। अधिकतर तानों के प्रकार अकार में ही होते हैं।

(2) **बोल की तान**–विलम्बित, द्रुत और मध्य लय में जब गीत के बोलों के साथ तानों का प्रयोग किया जाता है तो उन्हें बोल की तान कहते हैं। बोल-तान दो प्रकार की होती है– (1) ध्रुपदांग बोलतान, (2) ख्यालांग बोलतान।

ध्रुपदांग बोलतान में केवल बोलों का ही प्रयोग होता है। इस में अवग्रह नहीं होते। ख्यालांग बोलतान में बोलों के साथ अवग्रह भी होते हैं जिसका उदाहरण नीचे दिया गया है।

उदाहरणार्थ–तान के शब्द (रोकत है),

राग बिहाग

प	म	ग	म	प	नी	सां	रें	|	सां	नी	ध	प	म	ग	रे	सा
रो	ऽ	ऽ	ऽ	क	ऽ	त	ऽ	|	है	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

(3) **फिरत की तान**–राग की जाति के अनुसार उसके स्वरों के क्रमबद्ध समूह को जल्दी-जल्दी उलटने पुलटने को फिरत की तान कहते हैं। जैसे–

तान राग बिहाग

ग म प म ग रे सा ऩी सा ग म प म ग रे सा ग म प म ग रे सा ऩी

सा ग म प ऩीं धं प म ग म प म ग रे सा ऽ प म ग म प नी सा गं

रें सां नी ध प म ग म प म ग म ग रे सा ऽ

(4) पलटे की तान—आरोह और अवरोह में राग की जाति के अनुसार पलटा लगाने को पलटे की तान कहते हैं। जैसे—

तान राग बिहाग

ऩी सा ग म सा ग म प, ग म प नी, म प नीं सा, प नी सां रे, नी सां

गं मं सां गं मं पं, मं गं रें सां नी ध प म ग रे सा ऽ

(5) सट्टे की तान—इस तान में विशेष बात यह है कि इसकी कोई लय नहीं होती। इसमें लय के दुगुन, तिगुन और चौगुन होने का पता भी नहीं चलता। यह केवल अनुमान से एवं गले की पूरी तैयारी द्वारा लगायी जाती है। बहुधा विभिन्न प्रकार की तानों के अंत में इसका प्रयोग होता है अर्थात् फिरत अथवा पल्टे की तान जब समाप्त हो जाती है तो मुखड़ा जोड़ने के लिए 'सट्टे की तान' का प्रयोग करते हैं।

(6) फिकरे की तान—यह तान भी सट्टे की तान की तरह ही होती है। किन्तु इनमें परस्पर अंतर यह है कि सट्टे की तान लम्बी होती है और फिकरे की तान छोटी होती है। स्मरण रहे कि फिकरा और सट्टा दोनों सपाट तान के ही अंग हैं।

(7) मींड की तान—यह तान एक स्वर से दूसरे स्वर पर बिना बीच में तोड़े हुए जल्दी-जल्दी कहने से बनती है। जैसे—

तान राग बिहाग

सा म ग प म ध प सां नी रें सां रें नी सां ध नी प ध म प ग म

सा रे ऩी सा

(8) **गमक की तान**—तान को गम्भीर बनाने तथा वीर रस का प्रयोग करने के लिये जब उसमें गमक का प्रयोग करते हैं तो उसे गमक की तान कहते हैं। गमक का उद्गम-स्थल नाभि-स्थान है।

(9) **जबड़े की तान**—जिस तान में जबड़ा हिलता हो उसे जबड़े की तान कहते हैं।

(10) **सपाट की तान**—जिस अकार की तान में एक स्वर केवल एक ही बार आये और आरोह-अवरोह एक ही साँस में समाप्त हो जायें, उसे सपाट की तान कहते हैं। जैसे—

तान राग बिहाग

ऩी सा ग म प नी सां गं मं पं मं गं रें सां नी ध प म ग रे सा-

(11) **पकड़ की तान**—जिस तान की एक बार की अवतारणा में ही राग का सम्पूर्ण रूप व्यक्त हो जाये उसे पकड़ की तान कहते हैं। जैसे—

तिलक कामोद

प़ ऩी सा रे ग सा रे म प ध म प नी सां प ध प म ग रे सा-

(12) **कूट तान**—संगीत-शास्त्रों में 49 कूटतानें उपलब्ध हैं। इन्हें आजकल सामूहिक रूप से 'मेहरखण्ड' के नाम की संज्ञा दी गयी है। कूटतानें एक प्रकार के क्लिष्ट पलटे ही हैं।

प्रश्न व अभ्यास

(1) आलाप की परिभाषा लिखिये। आलाप के दस लक्षणों को उदाहरण सहित समझाइये।

(2) तान के प्रचलित प्रकारों को उदाहरण सहित समझाइये। 16 मात्रा की कोई एक बोलतान लिखिये।

(3) ध्रुपदांग और ख्यालांग आलाप में क्या भेद है? प्राचीन मतानुसार आलापों के नाम और भेदों का स्पष्टीकरण कीजिये।

(4) ध्रुपदांग और ख्यालांग बोलतान में क्या भेद है?

(5) किन्हीं दो रागों की आलाप—एक की स्थायी और एक की अन्तरे की—लिखिये।.

(6) निम्नलिखित तानें किस प्रकार की हैं?

(अ) ऩी सा ग म, सा ग म प, ग म प नी, म प नी सां,

प नी सां गं, नीं सां गं मं, सां गं मं पं

(आ) सा ग रे म, ग प, म ध, प नी, ध सां, सां धं

नी प, ध म, प ग, म रे, ग सा

मुर्की

एक प्रकार की लघु तान को मुर्की कहते हैं। इस में 4 या 5 से अधिक स्वरों का प्रयोग नहीं किया जाता है। इसका प्रयोग हलके एवं मधुर कंठ से ही होना चाहिये। मुर्कियों का प्रयोग ठुमरी में अधिक होता है। मुर्की अधिकतर चौगुन अथवा अठगुन लय में ही लगायी जाती है। मुर्की का एक प्रकार देखिये :—

प प म ग रे ग

कन

कन एक प्रकार का अलंकारिक स्वर है जो रागों में उनकी प्रकृति के अनुरूप गुरू से सीखने पर स्वतः लगता है। इसी कन के द्वारा एक ही स्वर अनेक रागों में लगता हुआ भी अलग-अलग मालूम होता है। उदाहरणार्थ, मुल्तानी की गांधार और टोड़ी की गांधार। मुल्तानी की गांधार में पंचम अथवा तीव्र मध्यम का कन लगता है जिसके कारण मुल्तानी की गांधार कुछ ऊँची प्रतीत होती है। इसके विपरीत टोड़ी की गांधार में ऋषभ का कन लगता है जिसके कारण वह कुछ नीची प्रतीत होती है। कनों के प्रयोग का यही उद्देश्य है। कन इस प्रकार लिखा जायेगा—

प[ध]।

कंपन

किसी भी स्वर के एक ही स्थान पर 'आन्दोलन' करने (हिलने) को कंपन कहते हैं। तंतु-वाद्यों में इसका प्रयोग अधिक होता है।

मींड

किसी एक स्वर से दूसरे स्वर पर बिना बीच में तोड़े हुए (घसीट कर) जाने की मींड कहते हैं। जो इस प्रकार लिखी जाती है प͡ ग। वैसे मींड का प्रयोग समस्त भारतीय संगीत में होता है परन्तु ध्रुपद-शैली में और ओड़व जाति के रागों में विशेषकर इसका प्रयोग होता है। मींड के समान एक और क्रिया है जिसे सूंत कहते हैं। मींड और सूंत में केवल इतना ही अन्तर है कि मींड अवरोह में होती है और सूंत अथवा घसीट आरोह में लगती है। दूसरे शब्दों में 'आरोह की मींड' ही सूंत कहलाती है।

गमक

गमक एक प्रकार का गंभीर नाद है जो नाभि-स्थान से निकलता है। अगर हम लबालब पानी से भरे हुए घड़े को एकदम से उलट दें तो जो आवाज निकलेगी वह गमक के समान होगी। वीर रस अथवा रौद्र रस का उद्रेक करने हेतु ही अधिकतर गमक लगाई जाती है। ध्रुवपद-गायकी में इसका अधिक प्रयोग होता है।

छूट

एक स्वर से, तीन-चार स्वर छोड़ कर दूसरे स्वर पर तोड़ कर जाने को छूट कहते हैं। जैसे 'सां' से 'प'। वाद्य-संगीत में इसका अधिक प्रयोग होता है।

आरोह-अवरोह

आरोह और अवरोह को संस्कृत में अनुलोम और विलोम भी कहते हैं। नीचे के स्वर से ऊपर जाने को आरोह और ऊपर के स्वर से नीचे आने को अवरोह कहते हैं। उदाहरणार्थ–

आरोह–सा, रे, ग, म, प, ध, नी, सां

अवरोह–सां, नी, ध, प, म, ग, रे, सा

पकड़

ऐसा स्वरसमूह जिसके गाने से राग का रूप स्पष्ट हो जाये उसे पकड़ कहते हैं। हर राग की 'पकड़' अलग-अलग होती है। जैसे–

तिलक कामोद की पकड़

पा, ऩी, सा, रे, ग, सा, रे, प, म, ग, सा, ऩी

वक्र

किसी स्वर को सीधे न लगा कर जब उसको दूसरे स्वरों के व्यवधान में लगाते हैं तब उसे वक्र स्वर कहते हैं। उदाहरणार्थ ग, म, रे, सा अथवा ध, नी, प में पहले समूह में ग और दूसरे समूह में नी वक्र स्वर हैं।

वादी, समवादी, अनुवादी, विवादी

प्रत्येक राग में वादी, समवादी, अनुवादी एवं विवादी स्वर होते हैं। इन स्वरों का महत्व बताते हुए 'अभिनव रागमंजरी' में लिखा है—

वादी स्वरस्तु राजा स्यान्मंत्री संवादिसंज्ञितः।
स्वरो विवादी वैरी स्यादनुवादी च भृत्यवत्।।

अर्थात् राग में वादी स्वर राजा के समान, समवादी मंत्री के, विवादी शत्रु के और अनुवादी सेवक के सदृश होता है।

वादी स्वर—वादी स्वर पर ही राग का पूर्ण स्वरूप निर्भर रहता है। इसी कारण इसे 'जीव' अथवा अंश स्वर कहते हैं। 'अभिनव रागमंजरी' में भी उक्त श्लोक में वादी स्वर की स्थिति राजा की भाँति बताई गयी है। इस स्वर के अभाव में राग का रूप व्यक्त ही न हो पायेगा। यदि यमनकल्याण राग से उसका केवल वादी स्वर गांधार निकाल दें तो उसका शुद्ध स्वरूप बनाना ही असंभव हो जायेगा। इसी कारण राग में वादी स्वर अत्यंत महत्वपूर्ण बताया गया है।

समवादी—समवादी वादी का प्रथम सहायक स्वर होता है। किसी भी राग में समवादी का प्रयोग वादी से कम एवं अन्य स्वरों से अधिक होता है। समवादी स्वर वादी स्वर से सदैव तीसरा अथवा चौथा होता है। इसे स्वररूपी साम्राज्य में मंत्री की संज्ञा दी गयी है।

अनुवादी—वादी, समवादी और विवादी स्वर के अतिरिक्त राग में लगने वाले सभी स्वर अनुवादी होते हैं। इन्हें राग के सेवक की संज्ञा दी गयी है।

विवादी—विवादी वह स्वर है जिसके अधिक प्रयोग से राग का रूप नष्ट हो जाता है। किन्तु कुशल गायक विवादी स्वर को कलात्मक रूप से प्रयोग में

लाते हैं। फलस्वरूप राग की रंजकता बढ़ती ही है और यह शास्त्र-सम्मत भी है।

विवादी स्वर की स्थिति बहुधा दो वादी स्वरों के बीच में उसी प्रकार होती है जैसे दो सिपाहियों के बीच में चोर। जिस प्रकार चोर दो सिपाहियों के बीच में किसी को हानि नहीं पहुँचा पाता उसी प्रकार दो वादी स्वरों के बीच में प्रयुक्त विवादी स्वर राग को हानि नहीं पहुँचा सकता। अपितु रंजकता ही बढ़ाता है। जैसे भैरव में कोमल निषाद का प्रयोग ध़ ऩी ध़ प। कुशल गायक द्वारा किसी विशेष राग में उचित स्थान पर विवादी स्वरों का प्रयोग होने से राग का रूप उतना ही आकर्षक हो जाता है, जिस प्रकार चन्द्रमुख पर काला तिल।

अंश

अंश, वादी का पर्यायवाची शब्द है। वादी स्वर ही अंश स्वर कहलाता है। इसे 'जीव' स्वर भी कहते हैं।

न्यास एवं गृह

प्राचीन काल में रागों की अवतारणा हेतु उनके आरंभ और अंत करने के स्वर नियत थे। अर्थात् राग जिस स्वर से आरंभ होता था उसे 'गृह' एवं जिस स्वर पर समाप्त होता था उसे 'न्यास' कहते थे। वर्तमान काल में यह नियम प्रचलित नहीं है। रागों की बढ़त करने के लिये न्यास का प्रयोग तो होता है परन्तु प्राचीन काल की तरह राग के आरंभ तथा अंत करने के स्वर नियत नहीं हैं।

अल्पत्व

राग में किसी स्वर के कम प्रयोग होने से वह स्वर अल्पत्व को प्राप्त होता है। अर्थात् राग में जिस स्वर का कम प्रयोग होता है तो कहा जाता है कि उस स्वर को अल्पत्व प्राप्त है। अल्पत्व दो प्रकार से दर्शाया जाता है–(1) लंघन, (2) अनभ्यास।

लंघन–स्वर के बिलकुल प्रयोग न करने को 'लंघन' कहते हैं।

अनभ्यास–स्वर को कम मात्रा में प्रयोग करने को अनभ्यास कहते हैं।

बहुत्व

राग में किसी स्वर के अधिक प्रयोग को बहुत्व कहते हैं। यह भी दो प्रकार

से दर्शाया जाता है—(1) अलंघन, (2) अभ्यास।

अलंघन—जब राग में किसी स्वर विशेष को बिना वर्जित किये आरोह-अवरोह की क्रिया करते हैं तो उसे उस स्वर का अलंघन कहते हैं।

अभ्यास—अन्य स्वरों के माध्यम से बार-बार किसी विशेष स्वर पर न्यास करने को अभ्यास कहते हैं।

प्रश्न व अभ्यास

(1) अल्पत्व और बहुत्व की क्रियाओं को स्पष्ट करते हुए राग में उनके महत्व को समझाइये।

(2) वादी, समवादी, अनुवादी, विवादी और ग्रह, अंश, न्यास की परिभाषा लिखते हुए राग में उनके उपयोग की महत्ता को सिद्ध कीजिये।

(3) मींड और सूंत, गमक और कंपन, पकड़ और आरोह-अवरोह में क्या भेद है? स्पष्ट लिखिये।

(4) निम्नलिखित आलापों में किन-किन स्वरों का अल्पत्व और बहुत्व है—

बहुत्व

(अ) ऩ़ी रे ग, म॑ ग, ध प म॑ ग, रे ग, ऩ़ी रे सा
प ग, प ध प ग, नी ध प म॑ ग, रे ग, रे, ऩ़ी रे सा

अल्पत्व

(आ) ऩ़ी रे, सा, ध़ ऩ़ी रे, सा, प म॑ ध प म॑ ग, रे, सा,
नी ध म॑ प, म॑ ध नी, ध प, (प) रे, सा

(5) एक ख्यालांग आलाप लिखिये जिसमें मींड, मुर्की, कन का सही प्रयोग हो।

रागों का समय-विभाजन

हिन्दुस्थानीय रागाणां त्रयो वर्गाः सुनिश्चिता।
स्वरविकृत्यधीनास्ते लक्ष्यलक्षणकोविदैः।।

—श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्

भारतीय शास्त्रीय संगीत के गायन में रागों के समय-विभाजन का अत्यधिक महत्व है। प्रत्येक थाट से उत्पन्न रागों के गाने का समय संगीत-शास्त्रज्ञों द्वारा निश्चित कर दिया गया है। रागों का यह समय-विभाजन प्राचीन काल से ही संगीत शास्त्र में प्रचलित है। यद्यपि आधुनिक शास्त्रज्ञों ने रागों के प्राचीन समय-विभाजन में कुछ संशोधन अवश्य किये हैं किन्तु वह सर्वमान्य नहीं हैं। रागों के प्राचीन समय-विभाजन से अधिकांश संगीतज्ञ एकमत हैं।

शास्त्रीय संगीत में गाये जाने वाले समस्त रागों को उनमें लगने वाले कोमल-तीव्र स्वरों के आधार पर, निम्न तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) कोमल ऋषभ और कोमल धैवत स्वर वाले राग।

(2) तीव्र अथवा शुद्ध ऋषभ-धैवत स्वर वाले राग।

(3) कोमल गांधार और कोमल निषाद स्वर वाले राग।

सन्धिप्रकाश राग—दो चीज़ों के मिलने को संधि कहते हैं। यहाँ हमारा तात्पर्य दो कालों के मिलने से है। इस प्रकार की संधियाँ दिन-रात में दो बार होती हैं, एक सूर्योदय के समय, दूसरी सूर्यास्त के समय। इन संधियों का समय शास्त्रियों ने प्रातः और सायंकाल 4 से 7 बजे तक माना है।

अतः इन संधि-कालों में गाये जानेवाले रागों को संधिप्रकाश राग की संज्ञा दी गयी है। संधिप्रकाश रागों में ऋषभ का कोमल होना और गांधार का शुद्ध होना परमावश्यक है। धैवत चाहे जैसा हो। इस काल में भैरव, पूर्वी और मारवा नामक थाटों के राग गाये जाते हैं।

शुद्ध रे ध वर्ग के राग

संधिप्रकाश काल के पश्चात् अर्थात् 7 से 12 बजे के बीच में गाये जाने वाले राग इसी वर्ग में आते हैं। इस वर्ग के रागों में ऋषभ 'रे' और धैवत 'ध' स्वर तो शुद्ध होने ही चाहिये, साथ ही गांधार का भी शुद्ध होना नितान्त आवश्यक है। इस वर्ग में यमन, बिलावल और खमाज नामक थाटों से उत्पन्न होने वाले राग गाये जाते हैं। कुछ संगीत-विद्वान इस वर्ग के रागों का गायन-समय 7 से 10 बजे तक ही मानते हैं।

कोमल ग़ नी़ वर्ग के राग

इस वर्ग के रागों के गाने का समय रे, ध शुद्ध वर्ग वाले रागों के बाद आता है अर्थात् कोमल ग़ नी़ स्वर वाले राग 12 से 4 बजे तक के समय में गाये जाते हैं। इस वर्ग में आने वाले रागों में अन्य स्वर चाहे जैसे लगें किन्तु गांधार (ग़) का कोमल होना आवश्यक है। जिन रागों में कोमल ग़, नी़ का प्रयोग होगा वे राग कोमल ग़, नी़ वाले ही वर्ग में आयेंगे, चाहे रे, ध स्वर कैसे ही लगें।

प्रत्येक वर्ग के रागों के गायन का जो समय ऊपर दिया गया है वह समय सुबह और शाम दोनों ही समय लागू होगा।

उक्त वर्गों के आधार पर निम्न तालिका में सर्वाधिक प्रचलित रागों के गायन-समय, थाट और वर्ग दिये जा रहे हैं।

राग-समय तालिका

वर्ग	समय	थाट	राग
कोमल रे़ ध़ वाले राग	प्रातः 4 से 7 बजे तक	भैरव	भैरव, रामकली, जोगिया, विभास, कालिंगड़ा, अहिर-भैरव, बंगाल-भैरव
"	"	पूर्वी	परज, बसंत, मनोहर आदि
"	"	मारवा	ललित, भंखार
शुद्ध रे ध वाले राग	प्रातः 7 से 12 बजे तक	यमन	गौड़ सारंग, हिंडोल

वर्ग	समय	थाट	राग
शुद्ध रे ध वाले राग	प्रातः 7 से 12 बजे तक	बिलावल	बिलावल, अल्हैया बिलावल, यमिनी बिलावल, कुकुभ बिलावल, देवगिरि बिलावल, लच्छासारन बिलावल, सरपरदा बिलावल, देशकार, गुनकली
,,	,,	खमाज	खोखर
कोमल ग नी वाले राग	दोपहर 12 से 4 बजे तक	काफ़ी	काफ़ी, भीमपलासी, पीलू धानी, बृन्दावनी सारंग, मियां की सारंग, शुद्ध सारंग, मधुमाद सारंग, देशी तोड़ी
,,	,,	भैरवी	बिलासखानी तोड़ी, भूपाल तोड़ी
,,	,,	आसावरी	आसावरी, कोमल आसावरी, झीलफर आसावरी, सिंधु भैरवी, गोपीबसंत, गांधारी, देव गांधार, जौनपुरी, देसी (दोनों धैवत वाली), आभेरी, खटतोड़ी
,,	,,	तोड़ी थाट	गूर्जरी तोड़ी, मियां की तोड़ी, मुल्तानी तोड़ी, मधुवन्ती
कोमल रे ध वाले राग	सायं 4 से 7 बजे तक	भैरव	ललिता गौरी, (भैरव)
,,	,,	पूर्वी	पूर्वी, पूरिया धनाश्री, श्री, श्री टंक, जयतश्री, मालश्री, गौरी पूर्वी, ललिता गौरी, मालवी, दीपक, (पूर्वी मेल), चन्द्र कल्याण, टंकी, त्रिवेणी, रेवा
,,	,,	मारवा	मारवा, पूरिया, पूर्वी, पूर्व कल्याण, मालीगौरा, वराटी, साज़गिरी
शुद्ध रे ध वाले राग	सायं 7 से 12 बजे तक	यमन	यमन कल्याण, शुद्ध कल्याण, जयत कल्याण, सावनी कल्याण, श्याम कल्याण, भूपाली, चंद्रकांत, हमीर, केदार, कामोद, छायानट, मारू बिहाग, मालश्री

वर्ग	समय	थाट	राग
शुद्ध रे ध वाले राग	सायं 7 से 12 बजे तक	बिलावल	बिहाग, शंकरा, नट बिहाग, हंसध्वनि, हेम कल्याण, दुर्गा (बिलावल थाट), भवानी, भिन्नषड़ज, मलुहाकेदार, नट, आसा, खमाज, दुर्गा (खमाज थाट), देस, तिलक-कामोद, जयजयवन्ती
,,	,,	खमाज	सोरठ, खम्बावती, गोरख कल्याण, चम्पक, झिंझोटी, नारायणी, रागेश्वरी, सरस्वती, हंसश्री
कोमल ग नी वाले राग	रात्रि 12 से 4 बजे तक	काफ़ी	बागेश्वरी, मालगुंजी, कौशी कान्हणा (बागेश्वरी अंग), आभोगी कान्हणा, शहाना, सूहा, सुणारई, बहार, मियां की मल्हार, सूर मल्हार, जयत मल्हार, हंस कंकिनी, पटदीप, गौड़ मल्हार (कोमल ग वाली), देव-साख, नटमल्हार, नायकी कान्हणा, नीलाम्बरी, मेघ मल्हार, रामदासी मल्हार, शिवरंजिनी, श्रीरंजिनी, सेंधवी (सिन्दूरा), हुसेनी कल्याण, हंस मंजरी
,,	,,	भैरवी	मालकौंस
,,	,,	आसावरी	दरबारी कान्हणा, अड़ाना, आनन्द भैरवी
,,	,,	तोड़ी	वसन्त (तोड़ी थाट का)

पूर्व राग और उत्तर राग

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागों को समय-विभाजन की दृष्टि से दो वर्गों में बाँटा गया है। मध्यान्ह 12 बजे से रात्रि के 12 बजे तक एवं रात्रि के 12 बजे से मध्यान्ह 12 बजे तक।

पूर्व राग—वे राग जो दिन के 12 बजे से रात्रि के 12 बजे तक गाये जाते हैं, उन्हें पूर्व राग कहते हैं।

उत्तर राग—वे राग जो रात्रि के 12 बजे से मध्यान्ह 12 बजे तक गाये जाते हैं, उन्हें उत्तर राग कहते हैं।

रागों के वादी स्वरों से यह जाना जा सकता है कि वह राग उपरोक्त किस समूह का है। सम्पूर्ण रागों के समय-विभाजन की तरह ही सप्तक के सात स्वरों को भी दो वर्गों में विभक्त किया गया है। 'सा' से लेकर 'म' तक अर्थात् सा रे ग म, सप्तक का पूर्वांग कहलाता है और इसी प्रकार 'प' से लेकर 'सां' तक अर्थात् प ध नी सां, सप्तक का उत्तरांग कहलाता है। अब यदि किसी राग का वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग में हो अर्थात् सा रे ग म के अन्तर्गत हो तो उसे पूर्वांगवादी राग कहेंगे। अर्थात् वह राग मध्यान्ह 12 बजे से रात्रि के 12 बजे तक के बीच का राग है। इसी प्रकार यदि राग का वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग अर्थात् प ध नी सां के अन्तर्गत हो तो उस राग का गायन-समय रात्रि के 12 बजे से मध्यान्ह 12 बजे के बीच में होगा और उसे उत्तरांगवादी राग कहेंगे।

इस प्रकार राग के वादी स्वर का ज्ञान हो जाने के पश्चात् राग का स्थूल समय भी निर्धारित किया जा सकता है।

आधुनिक संगीतशास्त्री पूर्वांग का क्षेत्र षड़ज से पंचम तक और उत्तरांग का क्षेत्र मध्यम से षड़ज तक मानते हैं। अतः जिन रागों में मध्यम अथवा पंचम में से कोई भी वादी स्वर होगा, वह राग आधुनिक संगीतविधाताओं के उक्त सिद्धांत

के अनुसार पूर्वांग अथवा उत्तरांग किसी भी वर्ग का हो सकता है। इस सिद्धांत के अनुसार मध्यम एवं पंचम दोनों ही स्वर पूर्वांगवादी अथवा उत्तरांगवादी रागों के जीव स्वर हो सकते हैं।

संधि प्रकाश राग

किन्हीं दो वस्तुओं के सौहार्द एवं सौजन्यतापूर्ण मिलन को 'संधि' कहते हैं। संगीत-क्षेत्र में ऐसी संधियाँ 24 घंटे में दो बार होती हैं, एक सूर्योदय के समय, दूसरी सूर्यास्त के समय। ऐसी संधियों के समय जो राग गाये जाते हैं, उन्हें संधिप्रकाश राग कहते हैं। इनका समय प्रातः व सायं 4 से 7 बजे तक माना गया है। जो राग सूर्योदय के समय गाये जाते हैं, उन्हें प्रातः कालीन संधिप्रकाश और जो सूर्यास्त के समय गाये जाते हैं, उन्हें सायंकालीन संधिप्रकाश राग कहते हैं। संधिप्रकाश राग में ऋषभ का कोमल होना और गांधार का शुद्ध होना परमावश्यक है। प्रातःकालीन संधिप्रकाश राग में शुद्ध मध्यम एवं सायंकालीन संधिप्रकाश राग में तीव्र मध्यम का बाहुल्य रहता है। इन संधियों का रागों की समय रचना से निकटतम सम्बन्ध है।

आश्रय राग

जब किसी राग से अन्य रागों का आविर्भाव अथवा जन्म होता है तो जन्म देने वाला मुख्य राग आश्रय राग कहलाता है। जैसे एक पेड़ से अनगिनत शाखाएँ फूटती हैं परन्तु उन सबका विकास-केन्द्र उस पेड़ का तना ही होता है वैसे ही संगीत में जिस राग से अनेक राग निकलते हैं तो जनक-राग ही आश्रय राग कहलाता है। उदाहरणार्थ, राग यमन कल्याण से राग भूपाली, हमीर, केदार, कामोद आदि रागों का जन्म होता है। अतः भूपाली आदि रागों का आश्रय राग यमनकल्याण हुआ। संगीत-शास्त्र में 10 आश्रय राग इस प्रकार हैं–

(1) यमन, (2) बिलावल, (3) खमाज, (4) भैरव, (5) पूर्वी, (6) मारवा, (7) काफ़ी, (8) भैरवी, (9) आसावरी और (10) तोड़ी। इन्हीं रागों से प्रशाखाओं-स्वरूप अन्य राग निकलते हैं।

इसी प्रकार प्राचीन राग-रागिनी व्यवस्था के भैरव, मालकौंस, हिंडोल, दीपक, श्री और मेघ राग आश्रय राग थे।

परमेल प्रवेशक

'पर' अर्थात् दूसरा, 'मेल' अर्थात् 'थाट', 'प्रवेशक' अर्थात् प्रवेश कराने वाला। इस प्रकार एक थाट से दूसरे थाट में प्रवेश कराने वाले रागों को 'परमेल-प्रवेशक' राग कहते हैं। जैसे मुल्तानी एक परमेल-प्रवेशक राग है। मुल्तानी राग यह बतलाता है कि दोपहर में कोमल ग॒ नी॒ वर्ग के गाये जाने वाले राग समाप्त हो रहे हैं और सायंकाल के कोमल ऋषभ के संधिप्रकाश राग आरम्भ होने वाले हैं। राग मुल्तानी में दोनों वर्गों के रागों के स्वर लगते हैं। इसी कारण इसके गाने का समय दिन का तीसरा प्रहर है और यह परमेल-प्रवेशक राग है।

प्रश्न व अभ्यास

(1) समय के अनुसार रागों के वर्गीकरण को एक तालिका द्वारा समझाइये। इस वर्गीकरण में कोमल रे॒ ध॒, शुद्ध रे ध और कोमल ग॒ नी॒ स्वरों का क्या महत्व है?

(2) संधिप्रकाश राग किन रागों को कहते हैं? गायन में उन्हें पहचानने की क्या विधि है?

(3) परमेल-प्रवेशक राग की परिभाषा लिखते हुए उसकी आवश्यकता समझाइये।

थाट

मेलः स्वरसमूहस्याद्रागव्यंजन शक्तिमान्।

—अभिनव रागमञ्जरी

अर्थात् मेल अथवा थाट स्वरों के उस समूह को कहते हैं, जिसमें राग उत्पन्न करने की शक्ति हो। नाद से श्रुति, श्रुति से स्वर, स्वर से सप्तक, सप्तक से थाट और थाट से रागों की कल्पना की गयी है।

थाटों का वर्गीकरण और उनकी उत्पत्ति

17वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, दक्षिण भारत में पं. व्यंकटमखी नाम के एक प्रसिद्ध संगीत-शास्त्री हो गये हैं। उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'चतुर्दण्डि प्रकाशिका' नाम से प्रख्यात है। इस ग्रन्थ में उन्होंने 72 थाटों (मेलों) की उत्पत्ति किस प्रकार होती है, इसका विशद वर्णन किया है।

व्यंकटमखी के पूर्व

पं. व्यंकटमखी के पूर्व रागों के वर्गीकरण हेतु राग-रागिनी व्यवस्था प्रचलित थी। जिस प्रकार आजकल हम 10 अथवा 72 थाट मान कर रागों का वर्गीकरण करते हैं, इसी प्रकार प्राचीन काल में 6 राग मानते थे और उन्हीं में से रागिनियाँ, पुत्रराग, पुत्रवधू राग इत्यादि निकलते थे। इसी प्रकार रागों का वर्गीकरण होता था।

17वीं शताब्दी तक रागों के वर्गीकरण के विषय में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई, किन्तु 17वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में निश्चित रूप से संगीत में थाट-पद्धति का प्रचार हो गया था।

एक अन्य संगीताचार्य श्री श्रीनिवास ने उसी समय थाट से रागों का उत्पन्न होना स्वीकार किया तथा रागों के तीन रूप संपूर्ण, षाड़व और ओड़व स्थिर किये। इस काल में संगीत-शास्त्रियों में थाट के विषय में पूर्ण मतैक्य था।

व्यंकटमखी की थाट-व्यंजना

17वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कर्नाटकी संगीत के प्रख्यात आचार्य पं. व्यंकटमखी ने गणित द्वारा यह सिद्ध किया कि जिस समय तक सप्तक में कोमल व तीव्र मिला कर 12 स्वर माने जायेंगे, उस समय तक एक सप्तक से 72 थाट अथवा मेल ही निकल सकते हैं। कलाप्रवीण, समस्त ललित कलाओं के स्रोत भगवान शंकर भी 73वाँ थाट नहीं निकाल सकते हैं, अर्थात् थाट-संख्या में तनिक भी परिवर्तन करना संभव नहीं है। ऐसी घोषणा पं. व्यंकटमखी ने की है।

दक्षिण में पं. व्यंकटमखी की इस थाट-योजना को ही रागों का आधार माना जाता है और अर्वाचीन संगीत-विद्वान स्व. श्री भातखण्डे जी ने भी रागों का वर्गीकरण इसी थाट-व्यवस्था द्वारा किया है। वास्तव में आधुनिक थाट-व्यवस्था दक्षिण की ही देन है। अब हम उक्त व्यवस्था पर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।

स्वर्गीय श्री भातखण्डे जी ने 72 थाटों में से केवल 10 थाटों का चुनाव किया है। उन्होंने इन 10 थाटों में ही आजकल उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रचलित समस्त रागों का वर्गीकरण किया है। इस प्रकार संक्षेप में थाटों के विकास का कार्य लोचन कवि से आरम्भ होकर भातखण्डे जी तक शृंखलाबद्ध है। परन्तु नये-नये रागों के उत्पन्न होने से उत्तर भारतीय दस थाट प्रचलित सभी रागों को अपने में समेट लेने में असमर्थ हैं। जैसे एक आधुनिक राग मदवन्ती सर्वप्रिय है, जो इन 10 थाटों में से किसी के अन्तर्गत नहीं आता। ऐसे और भी अनेक उदाहरण हैं। अपने विचार से दक्षिण भारत की 72 मेलों वाली व्यवस्था ही पूर्ण वैज्ञानिक है। भविष्य में यह व्यवस्था ही सर्वमान्य होगी, ऐसा विश्वास होता है।

थाटों के पाँच गुण

(1) थाट में सात स्वर होने चाहिये, अर्थात् उसे सम्पूर्ण होना आवश्यक है।
(2) यह सातों स्वर क्रमानुसार ही होने चाहिये जैसे सा रे ग म प ध नी।
(3) थाट में आरोह-अवरोह का होना आवश्यक नहीं है।
(4) थाट का रंजकतापूर्ण होना आवश्यक नहीं है।
(5) थाट में एक स्वर के दो रूप जैसे ग॒ ग नहीं आने चाहिये।

यद्यपि कर्नाटकी पद्धति में ऐसा होना अनुचित नहीं है।

12 स्वरों से 72 थाट निकालने की विधि

हम ऊपर कह चुके हैं कि थाट-पद्धति में दक्षिणी संगीताचार्यों ने प्रभावशाली खोज कर उन्हें एक नया रूप दिया। अतः अब, हम, उन्हीं की पद्धति को आधार मानकर, देखेंगे कि 12 स्वरों में से 72 थाट गणित द्वारा कैसे निकलते हैं।

सर्वप्रथम हम 12 स्वरों को क्रमानुसार इस प्रकार लिखेंगे–

सा रे रे ग ग म म॑ प ध ध नी नी

फिर सुविधा हेतु तनिक देर के लिये उक्त स्वरों में से तीव्र म॑ स्वर हटाकर गिनती को पूरा करने के लिये तार-षड़ज जोड़ देंगे। अब स्वर योजना इस प्रकार होगी–

सा रे रे ग ग म प ध ध नी नी सां

इस स्वर-समुदाय को बराबर भागों में विभाजित करेंगे। इनमें पहले भाग को पूर्व-मेलार्ध और दूसरे भाग को उत्तर-मेलार्ध कहेंगे। देखिये–

पूर्व-मेलार्ध	उत्तर-मेलार्ध
सा रे रे ग ग म	प ध ध नी नी सां

अब उक्त दोनों मेलार्धों में से भिन्न-भिन्न चार-चार स्वरों के मेलार्ध बनायेंगे। स्मरण रहे कि प्रत्येक मेलार्ध आपस में एक दूसरे से भिन्न होगा। पूर्व-मेलार्धों में पहला स्वर 'सा' और अन्तिम स्वर 'म' रहेगा। इसी प्रकार उत्तर-मेलार्धों में प्रथम स्वर 'प' और अंतिम स्वर तार-षड़ज रहेगा। जो इस प्रकार होंगे–

पूर्व-मेलार्ध	उत्तर-मेलार्ध
सा रे रे ग ग म	प ध ध नी नी सां

इसके बाद दोनों मेलार्धों में से 6-6 भिन्न-भिन्न मेलार्ध बनाने की विधि नीचे दी जा रही है–

पूर्व-मेलार्ध	उत्तर-मेलार्ध
1 सा रे ग म	1 प ध नी सां
2 सा रे ग म	2 प ध नी सां
3 सा रे रे म	3 प ध ध सां

4 सा रे ग॒ म	4 प ध नी॒ सां
5 सा रे ग म	5 प ध नी सां
6 सा ग॒ ग म	6 प नी॒ नी सां

उक्त मेलार्धों की रचना के पश्चात् अब पहले पूर्व-मेलार्ध से प्रत्येक उत्तर-मेलार्ध को मिलायेंगे। निम्न तालिका में प्रथम पूर्वमेलार्ध से प्रत्येक उत्तर-मेलार्ध इस प्रकार मिलाया गया है—

पूर्व-मेलार्ध	उत्तर-मेलार्ध
1. सा रे॒ ग॒ म	1. प ध॒ नी॒ सां
2. सा रे॒ ग॒ म	2. प ध॒ नी सां
3. सा रे॒ ग॒ म	3. प ध॒ ध सां
4. सा रे॒ ग॒ म	4. प ध नी॒ सां
5. सा रे॒ ग॒ म	5. प ध नी सां
6. सा रे॒ ग॒ म	6. प नी॒ नी सां

ऊपर पहले पूर्व-मेलार्ध से प्रत्येक उत्तर मेलार्ध को बारी-बारी से मिलाने पर उक्त 6 थाटों की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार यदि हम प्रत्येक पूर्व-मेलार्ध से बारी-बारी से प्रत्येक उत्तर मेलार्ध को मिलायेंगे तो गणित के अनुसार 6 × 6 = 36 थाटों की रचना होगी, जिनमें से 6 थाट ऊपर दिये जा चुके हैं। इन 36 थाटों में शुद्ध मध्यम का प्रयोग किया गया है। यदि हम शुद्ध मध्यम को निकाल कर उसके स्थान पर तीव्र मध्यम को रखें तो तीव्र मध्यम वाले 36 थाट और उत्पन्न होंगे। इस प्रकार दो भिन्न-भिन्न स्वर-समूहों से अलग-अलग 36, 36 थाट बनेंगे। यह 36 और 36 जोड़कर कुल 72 थाट हुए। शुद्ध मध्यम से बनने वाले 36 थाट इस प्रकार बनेंगे—

पूर्व-मेलार्ध	1 उत्तर-मेलार्ध
1 सा रे॒ ग॒ म	प ध॒ नी॒ सां
2 सा रे॒ ग॒ म	प ध॒ नी सां
3 सा रे॒ ग॒ म	प ध॒ ध सां
4 सा रे॒ ग॒ म	प ध नी॒ सां
5 सा रे॒ ग॒ म	प ध नी सां

पूर्व-मेलार्ध	उत्तर-मेलार्ध
6 सा रे ग म	प नी नी सां

2

1 सा रे ग म	प ध नी सां
2 सा रे ग म	प ध नी सां
3 सा रे ग म	प ध ध सां
4 सा रे ग म	प ध नी सां
5 सा रे ग म	प ध नी सां
6 सा रे ग म	प नी नी सां

3

1 सा रे रे म	प ध नी सां
2 सा रे रे म	प ध नी सां
3 सा रे रे म	प ध ध सां
4 सा रे रे म	प ध नी सां
5 सा रे रे म	प ध नी सां
6 सा रे रे म	प नी नी सां

4

1 सा रे ग म	प ध नी सां
2 सा रे ग म	प ध नी सां
3 सा रे ग म	प ध ध सां
4 सा रे ग म	प ध नी सां
5 सा रे ग म	प ध नी सां
6 सा रे ग म	प नी नी सां

	पूर्व-मेलार्ध	उत्तर-मेलार्ध
	5	
1	सा रे ग म	प ध॒ नी॒ सां
2	सा रे ग म	प ध॒ नी सां
3	सा रे ग म	प ध॒ ध सां
4	सा रे ग म	प ध नी॒ सां
5	सा रे ग म	प ध नी सां
6	सा रे ग म	प नी॒ नी सां
	6	
1	सा ग॒ ग म	प ध॒ नी॒ सां
2	सा ग॒ ग म	प ध॒ नी सां
3	सा ग॒ ग म	प ध॒ ध सां
4	सा ग॒ ग म	प ध नी॒ सां
5	सा ग॒ ग म	प ध नी सां
6	सा ग॒ ग म	प नी॒ नी सां

उक्त 36 थाटों में शुद्ध मध्यम का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार से अन्य और 36 थाट शुद्ध म के स्थान पर तीव्र म॑ का प्रयोग करने से बनेंगे। पं. व्यंकटमखी प्रणीत 72 थाटों की रचना उक्त प्रकार से है।

उत्तर भारतीय संगीत के 10 थाट

उत्तर भारतीय संगीत पद्धति के नियमानुसार थाट में एक स्वर के दो रूपों का प्रयोग वर्जित है, अतः व्यंकटमखी के 72 थाटों का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि इनमें से केवल 10 थाट ही ऐसे हैं जिनमें एक स्वर के दो रूपों का प्रयोग नहीं होता। स्व. श्री भातखण्डे जी ने इन्हीं 10 थाटों को उत्तर भारतीय संगीत पद्धति का आधार माना है। अतः इन्हीं 10 थाटों को उत्तर भारतीय संगीत में मान्यता प्राप्त है। इनमें से प्रत्येक थाट का नाम उससे उत्पन्न होने वाले राग के नाम पर ही रखा गया है। 10 थाट और उनके स्वर-समूह निम्न लिखित हैं–

संख्या	थाट का नाम		स्वर-समूह
(1)	यमन	—	सा रे ग म॑ प ध नी सां
(2)	बिलावल	—	सा रे ग म प ध नी सां
(3)	खमाज	—	सा रे ग म प ध नी॒ सां
(4)	भैरव	—	सा रे॒ ग म प ध॒ नी सां
(5)	पूर्वी	—	सा रे॒ ग म॑ प ध॒ नी सां
(6)	मारवा	—	सा रे॒ ग म॑ प ध नी सां
(7)	काफ़ी	—	सा रे ग॒ म प ध नी॒ सां
(8)	भैरवी	—	सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नी॒ सां
(9)	आसावरी	—	सा रे ग॒ म प ध॒ नी॒ सां
(10)	तोड़ी	—	सा रे॒ ग॒ म॑ प ध॒ नी सां

प्रश्न व अभ्यास

(1) थाट पद्धति के आविष्कारक और उनके ग्रंथ तथा काल का उल्लेख कीजिये।

(2) प्राचीन राग-रागिनी व्यवस्था क्या थी? किन कारणों से आगे चलकर थाट-व्यवस्था मान्य हुई?

(3) थाट की परिभाषा और उसके मुख्य नियम लिखिये।

(4) संपूर्ण थाट-व्यवस्था को एक तालिका द्वारा समझाइये कि गणित द्वारा कोमल तीव्र 12 स्वरों में से 72 मेल किस प्रकार निकलते हैं।

रागों की उत्पत्ति

संगीत में रागों की उत्पत्ति दो प्रकार से हुई मानी जाती है। प्रथम राग-रागिनी-व्यवस्था द्वारा एवं द्वितीय थाट-व्यवस्था द्वारा। दक्षिण भारतीय संगीताचार्य पं. व्यंकटमखी रचित 72 थाटों के अंतर्गत गणित द्वारा एक थाट से 484 राग निकलते हैं। किन्तु अधोलिखित श्लोकानुसार रागों के स्वरूप में रंजकता का होना भी एक अति आवश्यक गुण है।

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वर वर्णविभूषितः।
रंजको जनचित्तानाम् स रागः कथितो बुधैः।।

—संगीत रत्नाकर

भावार्थ—"ध्वनि की ऐसी विशिष्ट रचना, जो स्वर और वर्ण से विभूषित है और जिससे जन-मन-रंजन होता है, उसको राग कहते हैं।"

इस सिद्धांत के अनुसार वर्तमान समय में उत्तर भारत में लगभग 200 प्रचलित राग ऐसे हैं जो मधुर एवं कर्णप्रिय हैं।

रागों की मुख्य तीन जातियाँ

थाट की दृष्टि से शास्त्रीय रागों की उत्पत्ति पर विचार करने के पूर्व हम रागों की मुख्य तीन जातियों एवं अंग-उपांगों पर विचार करेंगे।

रागों की निम्नलिखित तीन जातियाँ होती हैं—

(1) सम्पूर्ण जाति—इसके आरोह-अवरोह दोनों में 7-7 स्वर लगते हैं।

(2) षाड़व जाति—इसके आरोह और अवरोह दोनों में 6-6 स्वर लगते हैं।

(3) ओड़व जाति— इसके आरोह और अवरोह दोनों में 5-5 स्वर लगते हैं।

स्मरण रहे कि यह तीनों जातियाँ आरोह और अवरोह में स्वतंत्र रूप से लगती हैं अर्थात् आरोह व अवरोह दोनों में दो विभिन्न जातियों का प्रयोग हो सकता है

क्योंकि कोई भी राग आरोह में एक जाति का और अवरोह में उसी या किसी अन्य जाति का हो सकता है। इसी कारण उक्त तीन मुख्य जातियों के आधार पर 9 अन्य जातियों का विकास हुआ है। इन्हीं 9 जातियों से कुल मिला कर एक थाट से 484 राग बनते हैं, जो नीचे दी गयी तालिका में दिये जा रहे हैं।

इस प्रकार गणित की दृष्टि से एक थाट से 484 रागों का जन्म हुआ, तो पं. व्यंकटमखी के 72 थाटों से 72 × 484 = 34838 राग और उत्तर भारतीय संगीत के 10 थाटों से 10 × 484 = 4840 राग तैयार हो सकते हैं। निम्न विधि के अतिरिक्त राग-निर्माण की अन्य प्रणालियाँ भी हैं।

9 जातियों से 1 थाट द्वारा उत्पन्न राग-संख्या

संख्या	जाति का नाम	आरोह में लगने वाले स्वरों की संख्या	अवरोह में लगने वाले स्वरों की संख्या	रागों की संख्या
1	सम्पूर्ण-सम्पूर्ण	7	7	1
2	सम्पूर्ण-षाड़व	7	6	6
3	सम्पूर्ण-ओड़व	7	5	15
4	षाड़व-सम्पूर्ण	6	7	6
5	षाड़व-षाड़व	6	6	36
6	षाड़व-ओड़व	6	5	90
7	ओड़व-सम्पूर्ण	5	7	15
8	ओड़व-षाड़व	5	6	90
9	ओड़व-ओड़व	5	5	225

रागों की कुल संख्या = 484

(1) राग में वादी और समवादी स्वर बदल देने से राग-परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ राग भूपाली में गांधार स्वर वादी है। यदि हम गांधार वादी न करके धैवत वादी कर दें तो वह राग भूपाली न होकर राग देशकार हो जायेगा।

(2) उत्तरांग और पूर्वांग बदलने से भी रागों की सृष्टि होती है। जैसे, राग पूरिया और सोहनी तथा दरबारी और अड़ाना ही को ले लीजिये। पूरिया

राग पूर्वांग प्रधान है और सोहनी उत्तरांग प्रधान राग है। यदि पूरिया राग को उत्तरांग में गायेंगे तो वह सोहनी राग प्रतीत होगा। इसी प्रकार दरबारी पूर्वांगवादी राग है और अड़ाना उत्तरांगवादी। यदि दरबारी राग को उत्तरांग में गायेंगे तो वह अड़ाना प्रतीत होगा। इन रागों को क्रियांग राग भी कहते हैं। कारण, यह रागों में 'क्रिया' करके या किंचित् मात्र परिवर्तन करके बनाये गये हैं।

जातियों द्वारा रागों की उत्पत्ति

पहले एक तालिका में बताया जा चुका है कि 9 जातियों से कुल 484 राग बनते हैं। किन्तु जिज्ञासु पाठक जातियों द्वारा उत्पन्न 484 रागों के बनने की विधि भी जानना चाहेंगे। निम्न पंक्तियों में इसी तथ्य को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। आगे एक-एक जाति के अंतर्गत राग-निर्माण की विधि का दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

सम्पूर्ण-सम्पूर्ण—इस राग के आरोह अथवा अवरोह दोनों में 7-7 स्वर लगेंगे, इनमें कोई स्वर घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता है। अतः इससे केवल एक राग की ही उत्पत्ति होगी।

सम्पूर्ण-षाड़व—इस जाति से 6 राग उत्पन्न होंगे। इसके आरोह में 7 और अवरोह में 6 स्वरों का प्रयोग होता है। राग-रचना में प्रत्येक बार अवरोह में एक स्वर कम करना पड़ेगा। पहले नी, फिर ध, तत्पश्चात् प। इस प्रकार क्रम से 'रे' स्वर तक एक-एक स्वर कम होता जायेगा। पाठकों की सुविधार्थ इस जाति से उत्पन्न रागों की एक तालिका नीचे दी जा रही है।

	सम्पूर्ण	षाड़व
(1)	सा रे ग म प ध नी सां	सां ध प म ग रे सा
(2)	सा रे ग म प ध नी सां	सां नी प म ग रे सा
(3)	सा रे ग म प ध नी सां	सां नी ध म ग रे सा
(4)	सा रे ग म प ध नी सां	सां नी ध प ग रे सा
(5)	सा रे ग म प ध नी सां	सां नी ध प म रे सा
(6)	सा रे ग म प ध नी सां	सां नी ध प म ग सा

षाड़व-सम्पूर्ण जाति से भी 6 ही राग बनेंगे क्योंकि जिस प्रकार उपरोक्त जाति में अवरोह में एक-एक स्वर नी ध प म ग रे क्रमशः घटाया गया है उसी प्रकार आरोह में भी रे ग म प ध नी स्वर क्रमशः घटाये जायेंगे।

सम्पूर्ण-ओड़व अथवा ओड़व-सम्पूर्ण दोनों जातियों से 15-15 राग उत्पन्न होंगे। सम्पूर्ण में 7 स्वर और ओड़व में 5 स्वरों का प्रयोग होता है। सम्पूर्ण-ओड़व में आरोह में 7 और अवरोह में 5 स्वरों का तथा ओड़व-सम्पूर्ण में आरोह में 5 तथा अवरोह में 7 स्वरों का प्रयोग होता है। जिस प्रकार सम्पूर्ण-षाड़व जाति के अवरोह में 1-1 स्वर क्रमशः घटाया गया है उसी प्रकार संपूर्ण-ओड़व जाति के अवरोह में 2-2 स्वरों की जोड़ियाँ क्रमशः निम्न प्रकार से घटायी जायेंगी।

नी ध, नी प, नी म, नी ग, नी रे, ध प, ध म, ध ग, ध रे, प म, प ग, प रे, म ग, म रे और ग रे। निम्न तालिका से यह क्रम और स्पष्ट हो जायेगा।

	सम्पूर्ण	ओड़व
1	सा रे ग म प ध नी सां	सां प म ग रे सा
2	सा रे ग म प ध नी सां	सां ध म ग रे सा
3	सा रे ग म प ध नी सां	सां ध प ग रे सा
4	सा रे ग म प ध नी सां	सां ध प म रे सा
5	सा रे ग म प ध नी सां	सां ध प म ग सा
6	सा रे ग म प ध नी सां	सां नी म ग रे सा
7	सा रे ग म प ध नी सां	सां नी प ग रे सा
8	सा रे ग म प ध नी सां	सां नी प म रे सा
9	सा रे ग म प ध नी सां	सां नी प म ग सा
10	सा रे ग म प ध नी सां	सां नी ध ग रे सा
11	सा रे ग म प ध नी सां	सां नी ध म रे सा
12	सा रे ग म प ध नी सां	सां नी ध म ग सा
13	सा रे ग म प ध नी सां	सां नी ध प रे सा
14	सा रे ग म प ध नी सां	सां नी ध प ग सा
15	सा रे ग म प ध नी सां	सां नी ध प म सा

इसी प्रकार ओड़व-सम्पूर्ण जाति के आरोह में भी 2-2 स्वरों की जोड़ियाँ घटाई जायेंगी जो निम्न प्रकार से हैं–

रे ग, रे म, रे प, रे ध, रे नी, ग म, ग प, ग ध, ग नी, म प, म ध, म नी, प ध, प नी और ध नी।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि सम्पूर्ण, षाड़व और ओड़व जातियाँ हर राग में स्वतंत्र रूप से लग सकती हैं और उक्त तालिकाओं द्वारा यह भी स्पष्ट है कि सम्पूर्ण से 1, षाड़व से 6 तथा ओड़व से 15 राग बनते हैं।

अब जातियों से उत्पन्न होने वाले रागों की संख्या गणित द्वारा निकालने की सरल विधि यह है कि आरोह की जाति से निकलने वाली आरोह-संख्या को अवरोह की जाति से निकलने वाली अवरोह-संख्या से गुणा कर दें तो उस जाति से निकलने वाले रागों की संख्या ज्ञात हो जायेगी। उदाहरणार्थ ओड़व-षाड़व जाति को ले लीजिये। ओड़व-जाति से 15 तथा षाड़व-जाति से 6 आरोह-अवरोह क्रमशः बनेंगे। इन दोनों संख्याओं को गुणा करने से ओड़व-षाड़व जाति से बनने वाले रागों की संख्या निकल आयेगी, जो 15 × 6 = 90 हुई।

सुविधा हेतु यहाँ प्रत्येक जाति से बनने वाले रागों की संख्या की तालिका गुणनफल के आधार पर दी जा रही है।

जातियों से बनने वाले रागों की संख्या

जाति	आरोह-संख्या	अवरोह-संख्या	राग-संख्या
सम्पूर्ण-सम्पूर्ण	1	1	1 × 1 = 1
सम्पूर्ण-षाड़व	1	6	1 × 6 = 6
सम्पूर्ण-ओड़व	1	15	1 × 15 = 15
षाड़व-सम्पूर्ण	6	1	6 × 1 = 6
षाड़व-षाड़व	6	6	6 × 6 = 36
षाड़व-ओड़व	6	15	6 × 15 = 90
ओड़व-सम्पूर्ण	15	1	15 × 1 = 15
ओड़व-षाड़व	15	6	15 × 6 = 90
ओड़व-ओड़व	15	15	15 × 15 = 225

कुल संख्या = 484

प्रश्न व अभ्यास

(1) जातियों से रागों की उत्पत्ति की क्रिया द्वारा एक थाट से कितने राग निकलते हैं? तालिका द्वारा समझाइये।

(2) जातियों के अतिरिक्त राग बनाने की कोई अन्य पद्धति भी है? उदाहरण सहित समझाइये।

(3) एक थाट से ओड़व-ओड़व जाति के कितने राग निकलते हैं? तालिका देकर समझाइये।

(4) हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति के 10 थाटों से जातियों द्वारा निकले हुए रागों की संख्या तालिका देकर समझाइये।

उत्तर भारतीय एवं कर्नाटकी संगीत की स्वर-तुलना

उत्तर भारतीय और कर्नाटकी दोनों संगीत-पद्धतियों में 12-12 स्वरों का प्रयोग होता है। किन्तु भाषा और स्थान-भेद के कारण स्वरों के नामों में कुछ परिवर्तन हो गया है। उदाहरणार्थ उत्तर भारतीय स्वर कोमल ऋषभ और कोमल धैवत कर्नाटकी संगीत के शुद्ध ऋषभ और शुद्ध धैवत के समान हैं। साथ ही उत्तर भारत के रे, ध स्वर कर्नाटकी संगीत के ग, नी स्वरों के समकक्ष हैं। इन स्वरों का और विश्लेषण करने पर हमें ज्ञात होगा कि उत्तर-भारतीय संगीत के रे, ध, रे, ध स्वर कर्नाटकी संगीत में क्रमशः रे, ध, ग, नी के समान हैं।

इस प्रकार कर्नाटकी संगीत के शुद्ध स्वर-सप्तक, उत्तर भारतीय संगीत के स्वरों के अनुसार निम्न हैं–

सा रे रे म प ध ध सां

यह स्वर-समूह कर्नाटकी संगीत के प्राचीन मुखारी राग के समान है और दक्षिण में इस स्वर-समूह को 'कनकांगी' मेल (थाट) की संज्ञा दी जाती है।

कर्नाटकी संगीत में शुद्ध स्वर की अवस्था सबसे नीची है। वहाँ कोमल स्वरों का प्रचलन नहीं है तथा सभी विकृत स्वर शुद्ध स्वर से ऊँचे होते हैं। कर्नाटकी संगीत में शुद्ध रे स्वर के पश्चात् शुद्ध 'ग' स्वर अथवा चतुःश्रुति 'रे' और शुद्ध 'ग' स्वर के पश्चात् षट्श्रुति 'ग' मानने की परिपाटी है।

उत्तर भारतीय संगीत के कोमल एवं शुद्ध 'ग' स्वर कर्नाटकी संगीत में क्रमशः साधारण ग और अंतर 'ग' के समान हैं। यही क्रम धैवत एवं निषाद स्वरों में भी है। कर्नाटकी संगीत में शुद्ध धैवत स्वर के पश्चात् क्रमशः शुद्ध नी (चतुःश्रुति ध) क्रैशिक नी (षट्श्रुति ध) और काकली नी स्वरों का प्रयोग होता है, जो उत्तर

भारतीय संगीत में क्रमशः शुद्ध 'ध', कोमल 'नी' और शुद्ध 'नी' स्वरों के समान हैं।

उत्तर भारतीय और कर्नाटकी संगीत के स्वरों की तुलनात्मक तालिका नीचे दी जा रही है–

संख्या	कर्नाटकी संगीत में प्रयुक्त स्वर	उत्तर भारतीय संगीत में प्रयुक्त स्वर
1	सा	सा
2	शुद्ध रे	कोमल रे
3	शुद्ध ग (चतुःश्रुति रे)	शुद्ध रे
4	साधारण ग (षट्श्रुति रे)	कोमल ग
5	अंतर ग	शुद्ध ग
6	शुद्ध म	शुद्ध म
7	प्रति म	तीव्र म॑
8	प	प
9	शुद्ध ध	कोमल ध
10	शुद्ध नी (चतुःश्रुति ध)	शुद्ध ध
11	क्रैशिक नी (षट्श्रुति ध)	कोमल नी
12	काकली नी	शुद्ध नी

प्रश्न व अभ्यास

(1) दक्षिण व उत्तर भारतीय स्वर-तुलना एक तालिका द्वारा स्पष्ट कीजिये।

(2) उत्तर भारतीय यमन कल्याण, भैरवी, तोड़ी और आसावरी रागों को कर्नाटकी संगीत-पद्धति में लिखिये और उसमें प्रयुक्त होने वाले स्वरों के नाम भी लिखिये।

तानपूरा

भारतीय शास्त्रीय संगीत में तानपूरे का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल में इसे तुम्बुरु वीणा कहा जाता था। अपने विचार से यह वाद्ययंत्र एकतारे का परिष्कृत रूप है। मध्यकाल में सन्त-गायक प्रायः एकतारे का ही प्रयोग करते थे। प्रामाणिक चित्रों में स्वामी हरिदास, सूरदास, पूरनदास आदि सन्त गायकों को एकतारे के साथ ही चित्रित किया गया है। इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि तानपूरा एकतारे का ही परिष्कृत रूप है। सन्त-गायकों में आज भी एकतारे का ही प्रचलन है। वास्तव में कण्ठ की साधना के लिये तानपूरा सर्वश्रेष्ठ वाद्य है।

तानपूरे के 12 भाग

यों तो तानपूरे आम, कटहल इत्यादि हल्की लकड़ियों के बनते हैं परन्तु तुन की लकड़ी का तम्बूरा सर्वोत्तम माना जाता है।

तानपूरे के निम्न 12 भाग होते हैं–

(1) लंगोट

(2) तोंबा

(3) तबली

(4) जवारी (पूर्वमेरु)

(5) गुलू

(6) डाँड़

(7) उत्तर मेरु

(8) तारगहन

(9) खूंटियाँ

(10) मन्के

(11) तार

(12) डोरे

1. **लंगोट**—तानपूरे के सब से नीचे के उस भाग को जिस में खूंटी से निकले हुए तार बाँधे जाते हैं, 'लंगोट' कहते हैं। नीचे के भाग में यह तोंबा और तबली को जोड़ने का काम भी करता है। यह भाग लगभग सभी तन्तु-वाद्यों में होता है।

2. **तोंबा**—तोंबा एक प्रकार क़ी गोल लौकी का, जिसे लोकभाषा में तितलौकी भी कहते हैं, बना होता है। यह लौकी बम्बई के पास मिरज नामक स्थान में सर्वोत्तम प्रकार की और बड़े से बड़े आकार की प्राप्त होती है। इसीलिये मिरज के तम्बूरे भारतवर्ष में सर्वोत्तम माने जाते हैं। तोंबा भीतर से पोला होता है और तबली इसके ऊपर मढ़ी जाती है। भीतर से पोला होने के कारण ही आवाज़ में गूंज पैदा होती है।

3. **तबली**—तोंबे के ऊपर मँढ़े हुए चौरस काष्ठ के तख्ते क़ो तबली कहते हैं। इसके मध्य में पूर्वमेरु अथवा जवारी स्थित होती है। तानपूरे के तार, इस पर से होकर, गुज़रते हैं।

4. **जवारी**—तबली के ऊपर जो हड्डी, सींग अथवा काष्ठ का लगभग $2\frac{1''}{2}$ लम्बा और 1" या $1\frac{1''}{4}$ चौड़ा टुकड़ा, काष्ठ के पावों पर टिका होता है, उसे तानपूरे की जवारी अथवा पूर्वमेरु कहते हैं। तानपूरे के चारों तार, जवारी पर खुदे हुए चार खाँचों में से होकर गुज़रते हैं।

5. **गुलू**—तोंबे और डाँड़ को जोड़ने वाले एक काठ के टुकड़े को गुलू कहते हैं। ऊपर की ओर यह डाँड़ की गोलाई के बराबर होता है और डाँड़ से जुड़ा रहता है तथा नीचे की ओर तोंबे के ऊपरी कटाव के बराबर होता है और तोंबे से जुड़ा रहता है। इसी गुलू में, तानपूरे को आकर्षक व कलापूर्ण बनाने के लिये कुछ कारीगर काष्ठ के पत्ते बनाकर जोड़ देते हैं, जो तोंबे पर कमल की भाँति प्रतीत होता है।

6. **डाँड़**—गुलू से लगे हुए एक लम्बे और भीतर से पोले काठ के टुकड़े को डाँड़ कहते हैं। इस में खूटियाँ, तारगहन और उत्तरमेरु लगे रहते हैं। अन्य वाद्य-यन्त्रों में डाँड़ पर पर्दे भी लगे रहते हैं।

7. **उत्तरमेरु**—तारगहन के बाद उसी आकृति का एक हड्डी का टुकड़ा लगा रहता है जिसके ऊपर से चारों तार गुज़रते हैं। उसे उत्तरमेरु कहते हैं।

8. **तारगहन**—खूंटियों के बाद चार छिद्रों से युक्त, एक हड्डी का पुल की आकृति का पतला टुकड़ा लगा रहता है जिसके छिद्रों में से होकर चारों तार गुज़रते हैं। इसी पुल को तारगहन कहते हैं।

9. **खूँटियाँ**—तानपूरे के चार तारों को लगाने और उन्हें कसने अथवा ढीला करने के लिए डाँड़ में उत्तरमेरु के बाद चार खूँटियाँ लगी रहती हैं। यह डाँड़ में इस तरह से छेद करके लगाई जाती हैं कि इन्हें आसानी से घुमाया जा सके। खूँटियाँ दो बीच में और एक-एक इधर-उधर दोनों तरफ़ होती हैं। बीच की दोनों खूँटियों में 'जोड़े के तार' लगे रहते हैं और इधर-उधर की खूँटियों में षड़ज और पंचम के तार लगे होते हैं।

10. **मन्के**—जवारी के नीचे तारों में छेददार मूँगे या गोल आकृति के लगे चार पत्थरों को मन्का कहते हैं। चारों तार मन्कों के छेदों में से ही ले जा कर नीचे लंगोट में बांध दिये जाते हैं। स्वरों का सूक्ष्म उतार-चढ़ाव इन्हीं मन्कों द्वारा ही होता है।

यों तो मन्के कई आकार प्रकार के होते हैं किन्तु वास्तव में अंडाकार मन्के गोल, सुन्दर एवं उपयोगी होते हैं।

11. **तार**—तानपूरे में बीचोबीच में पतले डोरे जैसे चार तार लगे रहते हैं। इनमें दो बीच के जोड़े के तार लोहे के होते हैं। षड़ज का तार पीतल का होता है जो जोड़े के तारों के दाहिनी ओर लगा होता है। विधिपूर्वक तानपूरे के मिल जाने के पश्चात् उसको छेड़ने से षड़ज से गांधार और पंचम से ऋषभ स्वरों की गूंज निकलती है। तानपूरे को ठीक मध्य में छेड़ने से अच्छी गूंज उत्पन्न होती है। ऐसा न करने पर पूरी गूँज न निकल पायेगी।

तानपूरा

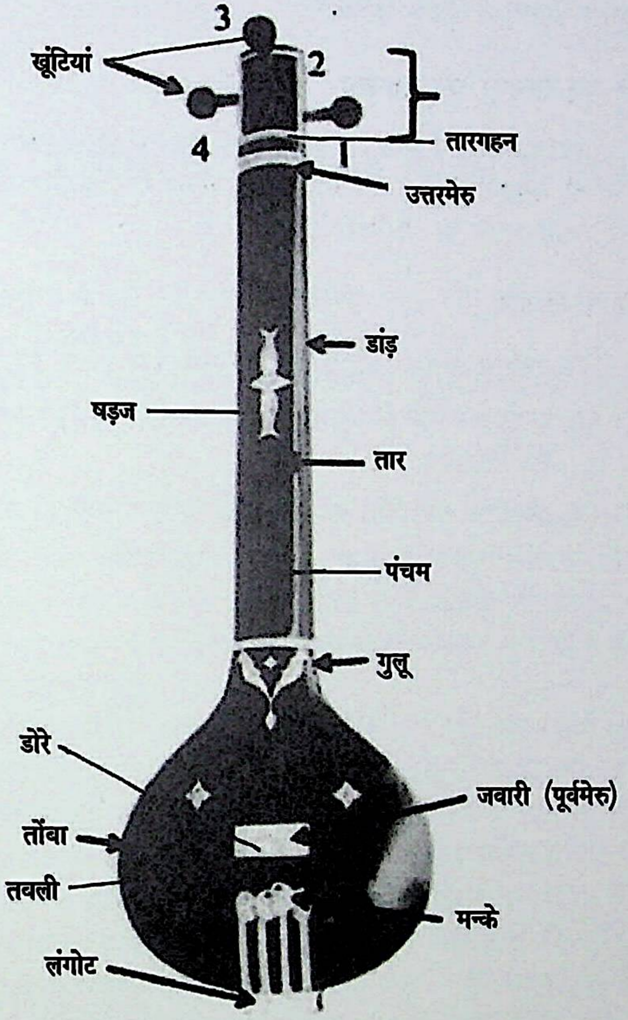
3
खूंटियां
2
4
तारगहन
उत्तरमेरु
डांड़
षड़ज
तार
पंचम
गुलू
डोरे
जवारी (पूर्वमेरु)
तोंबा
तवली
मन्के
लंगोट

तानपूरा छेड़ते समय पालथी मार कर अथवा वीरासन से बैठना चाहिये। पंचम के तार को मध्यमा (बीच की उंगली) से और अन्य तीन तारों को तर्जनी (अँगूठे से दूसरी उंगली) से छेड़ना चाहिये।

मिले हुए तानपूरे की पहचान

तानपूरा मिलाने के बाद यदि केवल षड़ज छेड़ने से शेष 3 तार स्वतः ध्वनित हो उठें तो समझना चाहिये कि तानपूरा ठीक मिल गया है। यह कुछ अंशों में अच्छी जवारी खुलने पर भी निर्भर है।

प्रश्न व अभ्यास

(1) सर्वोत्तम तम्बूरा किस लकड़ी का और कहाँ बनता है?

(2) तम्बूरे के पञ्चम के तार को रागों के अनुसार किन-किन स्वरों में मिलाते हैं? लिखिये।

(3) तम्बूरे का एक चित्र बनाकर उसके विभिन्न अंगों का नाम लिखिये।

संगीत में प्रचलित विभिन्न गायन-शैलियाँ

इस प्रकरण में हम उत्तर भारत में प्रचलित प्रमुख गायन-शैलियों का वर्णन करेंगे। निम्न शैलियों को 3 वर्गों में बाँटा जा सकता है।

(1) शास्त्रीय (Classical), (2) सरल शास्त्रीय (Light Classical), (3) सुगम संगीत (Light Music)।

ध्रुवपद

ध्रुवपद गायन शैली के पूर्व भारतीय शास्त्रीय-संगीत में प्रबन्ध-गायन का प्रचलन था। इस काल में गायन में प्रबन्ध, वस्तु-रूपक आदि शैलियाँ भी प्रचलित थीं। आज से लगभग 500 वर्ष पूर्व कला-प्रेमी मुगल-सम्राट अकबर के काल से ध्रुवपद गायन का प्रचार एवं प्रसार हुआ।

पूर्व प्रचलित प्रबन्ध-गायन शैली के उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव, अंतरा तथा आभोग, यह 5 अवयव थे। ऐसा प्रतीत होता है कि स्थायी, अंतरा, संचारी और आभोग, यह 4 अवयव प्रबंध गायन शैली के उक्त 5 अवयवों की ही प्रतिमूर्ति हैं।

सम्राट अकबर के काल में रससिद्ध गायक संगीतमनीषी स्वामी हरिदास डागर, तानसेन, चिंतामणि मिश्र और बैजू बावरा आदि प्रमुख ध्रुवपद गायक हुए हैं। इन गुणीजनों एवं सिद्ध गायकों ने उस समय ध्रुवपद गायन शैली में काफ़ी प्रगति की। फलस्वरूप ध्रुवपद गायन में चार 'बानियों' अथवा 'घरानों' (1) खडार, (2) नौहार, (3) डागर और (4) गौरहार का प्रादुर्भाव हुआ। हाल में संगीत में हुए शोध कार्यों के आधार पर कहा जाता है कि उक्त चार बानियों के नाम राजपूतों के चार घरानों के नाम पर रखे गये थे। इनके वंशज आज भी भारत में मौजूद हैं।

स्व. पं. भातखण्डे जी के मतानुसार प्राचीन काल में गायी जाने वाली पंचगीतियाँ (1) शुद्धा, (2) भिन्ना, (3) बेसरा, (4) गौंडी एवं (5) साधारणी से ही ध्रुवपद की

उक्त चार बानियों की उत्पत्ति हुई है।

उत्तर भारत की लगभग प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा में ध्रुवपद के छंद उपलब्ध हैं। ब्रज, अवधी, खड़ी बोली, संस्कृत, फ़ारसी, पंजाबी, मारवाड़ी आदि भाषाओं के ध्रुवपद आज भी पुस्तकों में संगृहीत हैं।

ध्रुवपद एक प्रकार का गम्भीर गायन है। वास्तव में गायन की यह शैली पुरुष कण्ठ के लिये ही उपयुक्त है। संगीत के इतिहास में आज तक कोई भी ऐसी ख्यातिनामा स्त्री गायिका नहीं मिलती जिसने ध्रुवपद गायन में विशेषता प्राप्त की हो।

ध्रुवपद-गायन में गमक, मींड, सूंत और छूट आदि गायन-क्रियाओं का प्रयोग अधिक होता है। ध्रुवपद में बंदिश गाने से पहले ही आलाप करने का विधान है। इसमें बंदिश आरंभ होने के पश्चात् आलापचारी निषिद्ध है।

आधुनिक काल में ध्रुवपद गायकों के दो घराने प्रचलित हैं। केवल इनकी गायन-शैलियों (गायकी) में ही अंतर है। इन दोनों घरानों के मत इस प्रकार हैं—

जयपुर घराने के अनुसार ध्रुवपद को बिलकुल सीधे सरल ढंग से गाना चाहिये तथा दुगुन, तिगुन और लयकारी का काम नहीं होना चाहिये।

अन्य घरानों के अनुसार ध्रुवपद गायन में लयकारी आवश्यक है। यह तर्कसम्मत भी है क्योंकि संगीत में स्वर और लय दोनों का ही समान और महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिये यदि उसमें से लयकारी निकाल दी जाय तो ध्रुवपद एकांगी रह जायेगा।

ध्रुवपद गायन में ब्रह्म, रुद्र, लक्ष्मी, सूल, चौताल आदि तालों का प्रयोग होताहै। किन्तु 80 प्रतिशत गायक इसे चौताल में ही गाते हैं।

धमार

धमार और ध्रुवपद की गायन शैलियों में अत्यधिक साम्य है। धमार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक किंवदंती प्रसिद्ध है, जिसका उल्लेख हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने प्रख्यात उपन्यास 'मृगनयनी' में किया है। वर्मा जी के अनुसार धमार का आविष्कार तानसेन के समकालीन, श्रेष्ठ एवं सिद्ध गायक बैजू बावरा ने किया।

कहा जाता है कि ग्वालियर के ललित कला-प्रेमी राजा मानसिंह ने गायक बैजू से अनुरोध किया कि वे ध्रुवपद के अनुरूप ही कोई ऐसी अन्य शैली निकालें

जिसमें शृंगार रस का उद्रेक एवं चंचलता का पुट हो। बैजू ने एक गीत में, ध्रुवपद की गायन शैली में उक्त दोनों बातों का समावेश कर दिखाया। गायन की इस शैली को 'धमार' की संज्ञा दी गयी। बैजू बावरा रचित प्रथम धमार की पहली पंक्ति थी, 'राजा मान होली खेलें।'

धमार में अधिकतर होली की रंगीनियों का वर्णन रहता है। इसके गीतों में रंग, गुलाल, कुंकुम, पिचकारी आदि शब्दों का अधिक प्रयोग होता है। धमार-रचयिताओं ने पावस ऋतु के लिये लिखी गयी धमारों में भी होली का ही रूपक बाँधा है। राग मियाँ की मल्हार की एक धमार देखिये–

स्थायी

खेलन आयो होरी बरखा के समय
घन गरजत जैसे डफ़्ही धुकार,
खेलन आयो होरी बरखा के समय।

अंतरा

अबीर गुलाल के बादर छाये
मानो कामिनी दामिनी दमकत वदन उघार।
खेलन आयो होरी बरखा के समय।।

पुराने गायक आज भी धमार को होरी के नाम से पुकारते हैं। धमार में दुगुन, तिगुन, आड़ी क्वाड़ी, बोलतान और उपज आदि क्रियाओं का प्रयोग होता है। धमार हमेशा 'धमार-ताल' में गायी जाती है। धमार ताल में 14 मात्रायें होती हैं।

ख़्याल

ख़्याल फ़ारसी भाषा का शब्द है। ख़्याल का अर्थ है, स्वतंत्र विचार अथवा कल्पना। ख़्याल-गायन में गायक स्वतंत्र पक्षी की तरह विहार करता है। वह स्वतन्त्रतापूर्वक ख़्याल-गायकी में स्वेच्छानुसार ध्रुवपद, ठुमरी, क़व्वाली और टप्पा आदि का रंग ला सकता है। आधुनिक काल में ऐसे गायक हुए हैं जिनके ख़्याल-गायन में स्पष्ट क़व्वाली का रंग परिलक्षित होता है। आफ़ताबे-मौसीक़ी उस्ताद फैयाज़ ख़ाँ ख़्याल गायन में जब हाँ-हाँ करके बोल बनाते थे उस समय ख़्याल के साथ

क़व्वाली का भी आंशिक आनन्द मिलता था। संगीत-शास्त्रियों के मतानुसार क़व्वाली से ही ख़्याल गायकी का विकास हुआ है।

कुछ संगीत-शास्त्रियों का यह भी मत है कि ख़्याल गायन शैली में ध्रुवपद और क़व्वाली का मिश्रण है। अगर विलंबित लय के ख़्याल से मुर्की और खटके निकाल दिये जायें तो यह गायन-शैली ध्रुवपद के अनुरूप ही हो जायेगी।

दिल्ली के अंतिम मुग़ल सम्राट मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में नियामतख़ाँ और नौबतख़ाँ, संगीत-संसार में जो क्रमशः सदारंग और अदारंग के नाम से प्रसिद्ध हैं, चोटी के गायक थे। कहा जाता है कि इन्होंने ही संगीत में ख़्याल-गायकी को जन्म दिया। इन्होंने हर भाषा और हर राग में हज़ारों की संख्या में ख़्याल बनाये। कोई भी पुराना राग ले लीजिये, आपको उस राग में इनकी बंदिशें मिल जायेंगी। इसके अतिरिक्त इन्होंने मुसलमानों के संस्कार-गीत, बन्ने, सेहरा और घोड़ी आदि भी बनाये। ध्यान देने योग्य यह है कि सदारंग और अदारंग ने गायन में ख़्याल अंग को जन्म दिया तथा अपने अनगिनत शिष्यों को ख़्याल सिखाकर इसका अत्यधिक प्रचार और प्रसार किया। किन्तु इन्होंने स्वयं महफ़िलों और दरबारों में कभी भी ख़्याल नहीं गाया। उन्होंने सदा ध्रुवपद ही गाये क्योंकि उस ज़माने में ख़्याल-गायकी निम्न कोटि की समझी जाती थी और उच्च कोटि के गायक महफ़िल में ख़्याल गाना कभी नहीं पसन्द करते थे।

ख़्यालों के दो प्रकार

छोटा ख़्याल—छोटा ख़्याल मध्य एवं द्रुत लय में गाया जाता है। इसमें तान, लय-बाँट, सरगम और छोटे-छोटे आलापों का प्रयोग अधिक होता है। यह त्रिताल, झपताल, रूपक, एकताल, आड़ा-चौताला आदि तालों में गाया जाता है।

बड़ा ख़्याल—यह विलम्बित लय में गाया जाता है। बड़े ख़्याल की गायकी में गाम्भीर्य है। ख़्याल की बंदिश समाप्त करने के पश्चात् इसमें एक-एक स्वर की बढ़त करते हैं। तदोपरांत ख़्याल के बोलों की आलाप होती है—इसके पश्चात् गायक बहलावे की तान, लय-बाँट और विभिन्न प्रकार की तानों का प्रयोग करते हैं। स्व. भातखण्डे जी के मतानुसार सदारंग और अदारंग ने ख़्याल गायकी का आविष्कार तो किया किन्तु जनता में इसका प्रचार और प्रसार जौनपुर के सुल्तान हुसेन शर्की ने किया।

यह झूमरा, तिलवाड़ा, एकताल, आड़ा चौताला, रूपक, एकवाई आदि तालों में गाया जाता है।

ख़्याल और ध्रुवपद में विशेष अन्तर यह है कि ध्रुवपद-गायन में गायकी का आधा अंग अर्थात् आलापचारी बंदिश-गायन से पूर्व ही समाप्त हो जाती है जबकि ख़्याल-गायन में सम्पूर्ण गायकी बंदिश-गायन के पश्चात् आरम्भ होती है।

टप्पा

टप्पा पंजाबी भाषा का शब्द है। यह एक प्रकार का पंजाबी लोक-गीत है। वैसे टप्पा उत्तर भारत के प्रत्येक क्षेत्र में प्रचलित है किन्तु वास्तव में यह पंजाब में ऊँट चरानेवालों का गीत है। इसलिये टप्पे का साहित्य अधिकतर पंजाबी भाषा में ही उपलब्ध है। साधारणतया आजकल इसका प्रचलन बहुत कम है। सम्भवतः 5 प्रतिशत संगीतज्ञ ही इसे गाते हैं। केवल चन्द पुराने गायक ही इसके मर्मज्ञ हैं। संगीत-शास्त्रियों के मतानुसार गायन में टप्पा अंग के प्रवर्तक मियां शोरी थे और वह पंजाब प्रदेश के रहने वाले थे। संभवतः इसी कारण टप्पे का प्रादुर्भाव पंजाब में हुआ माना जाता है।

टप्पा-गायन में ठहराव का अत्यधिक अभाव है। अस्तु इसकी गायन-शैली की प्रकृति चंचल है और इसके साहित्य में शृंगार रस का आधिक्य है।

टप्पे में आलाप नहीं के बराबर होता है। इसमें तानों का ही प्रयोग होता है। टप्पे की कुछ विशेष प्रकार की तानें होती हैं जिनके नमूने नीचे देखिये—

(1) सां नी नी ध ध प प म म ग ग रे रे सा

(2) ध नी ध नी सां सां नी ध, प ध प ध नी नी ध प,
म प म प ध ध प म

टप्पे के दो भाग होते हैं जिन्हें 'तुक' कहते हैं। यह काफ़ी, भैरवी, खमाज, यमन कल्याण, तिलंग, आसावरी आदि सुगम रागों में गाया जाता है। इसमें सितारखानी, रूपक, फरोदस्त आदि तालों का प्रयोग होता है।

पुराने उस्ताद गले से तान निकलवाने के लिये विद्यार्थी को सबसे पहले टप्पा ही सिखाते थे। इस कारण संगीत-शिक्षा में इसका स्थान महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में वाराणसी (काशी) की रसूलनबाई टप्पे की कुशल गायिका हैं।

ठुमरी

कहते हैं कि ठुमरी का आविष्कार अवध के अंतिम नवाब वाजिदअलीशाह

उर्फ़ "अख़्तर मियाँ" ने किया। अख़्तर मियाँ ने बहुत-सी ठुमरियों की रचना की जो आज भी गायी जाती हैं। खमाज राग और झपताल में बँधी हुई इनकी एक ठुमरी नीचे दी जा रही है–

स्थायी

सुधि बिसर गयी आज अपने गुनन की
हूँ दाता दोऊ जग के खेवनहार

अंतरा

माड़े मड़ैया छावन लागे 'अख़्तर'
पीर फ़क़ीर सभी गुनी सुर मुनी

श्रृंगार-रस ठुमरियों का प्रधान रस है।

ठुमरी के दो प्रकार– (1) शब्द एवं लय प्रधान,
(2) स्वर-प्रधान

(1) शब्द एवं लय प्रधान–फरुख़ाबाद के 'ललनपिया' शब्द एवं लय प्रधान ठुमरी के प्रधान आचार्य माने जाते हैं। ललनपिया रचित 'ललन-सागर' ग्रंथ जो आज भी उपलब्ध है, इस शैली की ठुमरियों का सर्वोत्तम ग्रंथ माना जाता है। किन्तु स्वर-लिपि (Notation) के अभाव में यह अनुपयोगी ही है। ललनपिया की ठुमरियों में लय व शब्दों की सुन्दर काट-छाँट है। इनके नमूने देखिये–

(1) ए द्रुम द्रुम लता लता पता पता बेली बेली नवेली नवेली
छवि की छटा छटा घटा घटा, सोहईं सोहईं रंग रंग सों

(2) बरस गयी बरस गयी घन गगन आलि आज
कहा कहूं जिया पिया बिन रह्यो न जाय
तरस गयी तरस गयी, भाग जाग अपने सुहाग

कोई-कोई ठुमरी ऐसी हैं जिनका कलेवर त्रिताल का प्रतीत होता है किन्तु हैं वह झपताल, एकताल अथवा रूपक। अनुमानतः यह ठुमरियां केवल तबलियों से लड़न्त के लिए ही बनाई गयीं थीं।

दिल्ली के कीरत दास, गुसाईं उर्फ कुंवर श्याम, सुघर पिया, चाँद पिया, अख़्तर पिया, बेदिल, महाराज बिन्दादीन आदि कलाकारों की शैली की ठुमरियाँ आज भी उपलब्ध हैं।

(2) स्वर-प्रधान ठुमरी—आजकल गायक अधिकतर स्वर-प्रधान ठुमरी ही गाते हैं। इसके तीन प्रचलित प्रकार हैं—

(1) बनारसी अंग

(2) लखनवी अंग

(3) पंजाबी अंग

बनारसी अंग—इस प्रकार की ठुमरियों में बोलों की बढ़त धीरे-धीरे करते हैं। किन्तु इसमें मुर्की, खटके एवं तानों का प्रयोग कम होता है। वर्तमान समय में रसूलन बाई इस अंग की प्रमुख गायिका हैं।

लखनवी अंग—इस प्रकार की ठुमरियों में भी बोल धीरे-धीरे ही बनाये जाते हैं। किन्तु इसमें मुर्की, तानों और खटकों का प्रयोग अधिक होता है। इसकी प्रकृति चंचल है। वर्तमान काल में सर्वश्री शंभू महाराज, बब्बन साहब, अब्दुल हई एवं बेगम अख़्तर इस अंग के गायकों में प्रमुख हैं।

पंजाबी अंग—इस प्रकार की ठुमरियों में राग की शुद्धता पर ध्यान नहीं देते बल्कि कोमल, तीव्र सभी 12 स्वरों का प्रयोग होता है। इस में स्वर का ठहराव नहीं के बराबर होता है। फिरत, मुर्की, खटके और टप्पा अंग की तानों का प्रयोग इसमें अधिक होता है।

वर्तमान समय में बड़े गुलाम अली ख़ाँ, बरकत अली ख़ाँ एवं नगीने के अफ़ज़ल हुसेन इस अंग के सिद्ध गायक हैं।

स्वरप्रधान ठुमरी पहले विलम्बित लँय में चाचर ताल में गाते हैं। तत्पश्चात् कहरवे की द्रुत लय में (जिसे दौड़ भी कहते हैं) गाते हैं। इस दौड़ में तबलावादक लग्गियों का बड़ा सुन्दर प्रयोग करते हैं। यह काफ़ी, भैरवी, खमाज, तिलंग आदि रागों में गायी जाती है।

तराना

संगीत में गायन की तराना-शैली का आविष्कार किसने किया इस विषय में संगीत-शास्त्रियों का कोई साधिकार मत प्रकाश में नहीं आया है। एक किंवदंती के अनुसार तानसेन ने तोम और तानी दो लड़कियों के नाम पर तराना-शैली का निर्माण किया। कहा जाता है कि इन्हीं दोनों लड़कियों ने मेघ-राग की अवतारणा कर तानसेन के जलते हुए शरीर को शान्ति एवं शीतलता प्रदान की थी।

तराने में नेते रीरे तोम तनाना तनोम दिरदिर यलअलुम

आदि शब्दों का प्रयोग होता है, किसी-किसी तराने के अंतरे फ़ारसी भाषा में भी उपलब्ध हैं। बिलावल के तराने का अंतरा नीचे देखिये—

दारुन्दिले आमाज़ेदिल सतगूने हिरमाँ दरबग़ल
चश्मे बखूंदरी आस्तीं बतूफ़ाँ दरबग़ल

तराने में, यदाकदा तबला एवं मृदंग के बोल भी गाये जाते हैं। तराने की गायकी में तराने के बोलों के साथ ही राग विशेष की सरगम और तानों का भी प्रयोग होता है। बहादुर हुसेन ख़ाँ, तानरस ख़ाँ, अलियाफत्तू और अमीर ख़ुसरो द्वारा निर्मित तराने आज भी गाये जाते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि तराना तंत्र की नकल है क्योंकि तराने के उक्त उद्धृत बोल तंत्र के ही बोल हैं। तरानों में प्रयुक्त दिरदिर, दारा आदि बोल तंत्र के ही बोल हैं। बाद में इसमें तबले व मृदंग के बोल और कुछ फ़ारसी-साहित्य भी जोड़ दिया गया है। तराने में फ़ारसी का साहित्य अमीर ख़ुसरो की ही देन है।

सरगम

सरगम को स्वरमालिका की संज्ञा भी दी गयी है। संगीत के छात्रों को राग एवं ताल का ज्ञान कराने के लिए जो स्वरसमूह राग अथवा ताल में बाँध कर सिखाये जाते हैं उन्हें सरगम अथवा स्वर-मालिका कहते हैं।

वर्तमान काल में स्व. पं. भातखण्डे जी ने स्वर-मालिका का अत्यधिक प्रचार एवं प्रसार किया। "क्रमिक पुस्तक माला" में दी हुई लगभग सभी स्वर-मालिकाओं की रचना भातखण्डे जी ने ही की है।

लक्षण गीत

लक्षण गीत में राग के लक्षणों का उल्लेख रहता है। अर्थात् राग विशेष के गाने का समय, उसका वादी-समवादी स्वर, आरोह-अवरोह और पकड़ तथा वह किन-किन रागों से मिलता है आदि सभी बातें लक्षण गीत में दी जाती हैं। सम्भवतः लक्षण गीत का आविर्भाव छात्रों को राग के विषय में जानकारी कराने के लिये किया गया होगा। पं. भातखण्डे जी द्वारा रचित लगभग सभी रागों के लक्षणगीत 'क्रमिक पुस्तकमालिका' में संगृहीत हैं। राग भूपाली का एक लक्षण गीत देखिये—

स्थायी

म नी बरजि गाय रागनि कर जब,
भूपाली अंग कहत गुनी तब,
शुद्ध कल्याण बिलुमन तजत।

अंतरा

ग वादी और ध समवादी,
देशकार में अंश सुधैवत।
राग विभास तजत कोमल ध रे,
शास्त्रभेद समझाय चतुर।

अर्थात् रागिनी में से म और नी निकाल देने पर गुणीजन उसे राग-भूपाली कहते हैं। शुद्ध कल्याण के अवरोह में से नी और म निकालने पर भूपाली बनती है। इसका वादी स्वर 'ग' और समवादी स्वर 'ध' है। और भूपाली में, धैवत वादी करने से राग देशकार हो जाता है। विभास राग में कोमल रे और ध के स्थान पर शुद्ध रे, ध लगाने से वह भूपाली हो जाता है। भातखण्डे जी, उपनाम 'चतुर पंडित' के मतानुसार इन चारों रागों में यही शास्त्र-सम्मत भेद हैं।

भजन

यह हिन्दुओं का धार्मिक गायन है। भजन में भक्ति रस की प्रधानता रहती है। यह बिना किसी सजावट के शुद्धरूप से सीधा-सीधा गाया जाता है। भजन दादरा, कहरवा, रूपक आदि तालों में गाया जाता है। तुलसी, मीरा, सूर, कबीर, नानक, चरनदास, मंजुकेषी, युगलप्रिया, बुल्लेशाह, दरिया साहब, सैयद रोशन, अमीर खुसरो, महाराज बिन्दादीन आदि के भजन हज़ारों की संख्या में आज भी मिलते हैं।

तिरवट

तबला और मृदंग के बोलों को जब राग और ताल में बाँध कर गाया जाता है तो उसे तिरवट कहते हैं। गायन-शैली में तबला अथवा मृदंग से लड़ंत के लिये ही तिरवट बनायी गयी थी। प्रायः होरी व ध्रुवपद के गायक ही इसको गाते हैं।

वर्तमान समय में इसका चलन नहीं के बराबर रह गया है। एक तिरवट के बोल देखिये–

स्थायी क्ड़ा

ऽन धा धा धा	धा ऽ ऽ ऽ	तिट कत गदि गन	धा ऽ ऽ
3	×	2	0

अन्तरा

धिट धिट धा, धिट ताधा धा धिन	धिट, ता धिटि, त्त गिन, धा तिट
0	3

धिट, धिट	क्ड़धि, त्त ऽ न धा, धा, क्ड़धि	ऽता ऽन धा, धाऽ क्ड़धि, त्त
×		2

ऽ न धा	धा ऽ ऽ
	0

चतुरंग

संगीत में सरगम, तबले अथवा मृदंग के बोल, तंत्र के बोल और साहित्य के समावेश को चतुरंग कहते हैं। संभवतः तीन-चार प्रकार की शैलियाँ एक ही बंदिश में बाँध कर शिष्यों को बताने के लिए ही संगीत-पंडितों ने चतुरंग का आविष्कार किया होगा। चतुरंग की एक बंदिश देखिये–

स्थायी

नाचे संगीता नटवर भेष धरे
तांडव नृत्य करे, दरन मुरन परन सों।

अंतरा

तत वितत घन सुषिर

ओड़व मात्रा दश, सा रे ग प ध सां तिग्धा ताता थेई
चटक के मटक के चरण सों।

रागमाला

रागमाला में विभिन्न रागों का समावेश होता है। वर्तमान समय में रागमाला गाने का चलन नहीं के बराबर रह गया है। कुछ पुराने उस्ताद रागमाला को आलाप के ढंग से गाते हैं। यह रागों के नाम लेते जाते हैं और राग बदलते जाते हैं। किन्तु इस तरह की रागमाला तो कोई भी कुशल गायक बिना किसी पूर्व तैयारी के गा सकता है। वास्तव में यह एक एकांगी रागमाला है, क्योंकि इसमें लय अथवा ताल नहीं होती।

वास्तव में रागमाला की अपनी बंदिशें होती हैं और उसकी गायकी भी अलग ही होती है। वास्तविक रागमाला में जिन-जिन रागों के नाम आते जाते हैं उनकी गायकी भी साथ-साथ होती जाती है।

इसी प्रकार से तालमाला भी होती है जिसको उस्ताद लोग तालकचहरी भी कहते हैं। इसमें गीत के विभिन्न भाग अलग-अलग तालों में बाँध कर गाये जाते हैं और हर ताल की गायकी होती है। आजकल 'तालमाला' की गायकी प्रचार में नहीं है। एक रागमाला के बोल देखिये जो झपताल में है–

भैरव प्रथम राग दूजे मालकोस गाय
हिंडोल तीसरो दीपक चतुर गाय
श्री राग पंच न्यास छठे मेघ शुभकार

होली

होली फाल्गुन मास में ही गायी जाती है। यह अधिकतर काफ़ी, खमाज और भैरवी आदि रागों में बँधी होती है तथा चाचर ताल में गायी जाती है। यह एक प्रकार का लोक-गीत है जिसमें राधाकृष्ण और गोपी-ग्वालों के होली खेलने का वर्णन होता है। यह भी ठुमरी की तरह पहले चाचर में और फिर कहरवे में गायी जाती है।

प्रश्न व अभ्यास

(1) ध्रुवपद की विशेषताओं का वर्णन करते हुए उसका आरम्भ-काल और

उसकी चार बानियों के विषय में अपने विचार प्रकट कीजिये।

(२) धमार और ध्रुवपद में क्या भेद है? स्पष्ट कीजिये।

(३) ख़्याल के आविष्कार के सम्बन्ध में क्या जानते हैं? ख़्याल और ध्रुवपद की तुलना-स्पष्ट रूप से कीजिये।

(४) ठुमरी के आविष्कारक कौन थे? ठुमरी कितने प्रकार की होती है? ठुमरी-शैली के रचयिताओं के नामों का उल्लेख कीजिये।

(5) तराना और तिरवट का भेद स्पष्ट कीजिये।

(6) लक्षणगीत किसे कहते हैं और गायन में इसकी क्या आवश्यकता है?

(7) चतुरंग किसे कहते हैं? समझाइये।

प्रमुख रागों की व्याख्या तथा उनके सूक्ष्म आलाप

वृन्दावनी सारंग

यह काफ़ी थाट का राग है। इसकी जाति 'ओड़व-ओड़व' है, अर्थात् आरोह-अवरोह दोनों में पाँच-पाँच स्वर लगते हैं। इस राग में गांधार और धैवत स्वर वर्जित हैं। 'धैवत' का प्रयोग कभी-कभी ही होता है। इसमें दोनों निषादों का प्रयोग होता है—आरोह में शुद्धं निषाद का और अवरोह में कोमल निषाद का। इसका वादी स्वर रे और समवादी प है। इसके गाने का समय दिन का द्वितीय प्रहर है।

सारंग प्रचीनतम रागों में से एक है। इसके अनेक प्रकार हैं जैसे वृन्दावनी सारंग, गौड़ सारंग, मधुमाद सारंग, मियाँ की सारंग, लंकदहन सारंग, शुद्ध सारंग आदि।

विभिन्न रागों में सारंग का महत्वपूर्ण स्थान है। यह अपने प्रकारों के अतिरिक्त हर प्रकार के कान्हड़ा और मल्हार में उसी प्रकार मिला रहता है जैसे दूध में घी। कान्हड़ा और मल्हार के लगभग हर प्रकार में सारंग का अंश अवश्य मिला रहता है। इसकी प्रकृति गम्भीर है तथा इसका रस करुण-शृंगार है।

आरोह—सा रे म प नी सां

अवरोह—सां <u>नी</u> प म रे सा

पकड़—ऩी सा रे, सा रे, प म <u>नी</u> प, म रे, सा

आलाप राग वृन्दावनी सारंग

स्थायी

सा, ऩी सा रे, प़ ऩी सा रे, रे म़ रे, प म रे, म प म रे, म प नी सां, <u>नी</u> प म प, रे म प, <u>नी</u> प, सां <u>नी</u> प म रे, प रे, सा

अंतरा

म प, नी, सां, प नी, सां नी सां रें, मं रें, नी सां, <u>नी</u> प, म रे, सा

राग भीमपलासी

यह राग काफ़ी थाट से निकलता है। इसकी जाति ओड़व-सम्पूर्ण है, अर्थात् आरोह में पाँच स्वर और अवरोह में सात स्वर लगते हैं। आरोह में ऋषभ और धैवत स्वर वर्जित हैं। इसमें गांधार कोमल और दोनों निषादों का प्रयोग होता है। वृन्दावनी सारंग की तरह आरोह में शुद्ध निषाद और अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग होता है। प्रचार में शुद्ध निषाद का प्रयोग कम है। यह केवल तानों के लिये ही प्रयोग में आता है। इस राग का वादी स्वर 'म' तथा समवादी 'सा' है। इसके गाने का समय दिन का द्वितीय प्रहर है। इस राग की प्रकृति गम्भीर एवं इसका रस करुण है।

राग भीमपलासी को काफ़ी थाट का विहाग समझिये। अर्थात् विहाग और भीमपलासी एक ही जाति के राग हैं।

आरोह–<u>नी</u> सा <u>ग</u> म, प, नी सां

अवरोह–सां <u>नी</u> ध प म, <u>ग</u> रे सा

पकड़–<u>नी</u> सा म, म <u>ग</u>, प म, <u>ग</u> म <u>ग</u> रे सा

आलाप राग भीमपलासी

स्थायी

<u>नी</u> सा म, प <u>ग</u>, म प, म, <u>ग</u>, रे सा, <u>नी</u> सा म <u>ग</u> रे सा,

<u>ग</u> म प म, <u>नी</u> ध प म, प <u>ग</u>, म <u>ग</u>, रे सा

अंतरा

ग म प नी सां, नी ध प म, ग म प नी सां, नी सां, प नी सां रें, नी सां, मं गं रें सां, नी ध प म, प ग म ग रे सा

राग भैरव

यह राग भैरव थाट से निकलता है। भैरव प्राचीनतम 6 रागों में प्रथम है। इसकी जाति सम्पूर्ण है अर्थात् आरोह और अवरोह दोनों में सात-सात स्वर लगते हैं। इस राग में ऋषभ एवं धैवत स्वर कोमल और गांधार, मध्यम एवं निषाद स्वर शुद्ध होते हैं। विवादी स्वर के रूप में कभी-कभी कोमल निषाद का भी प्रयोग होता है। इसमें धैवत एवं ऋषभ आन्दोलित स्वर हैं। भैरव का वादी स्वर धैवत और समवादी स्वर ऋषभ है। यह प्रातःकाल में गाया जाने वाला राग है।

भैरव एक आश्रय राग है। दक्षिण में इस राग को "माया-मालगौड़" कहते हैं। राग भैरव की प्रकृति गम्भीर है एवं यह भक्तिरस प्रधान राग है।

आरोह—सा रे ग म, प ध, नी सां

अवरोह—सां नी ध, प म ग, रे सा

पकड़—सा, ग म, प, ध, प

आलाप राग भैरव

स्थायी

नी

सा, ग म ध, प, म प, ग म, ध, ध प, ग म रे, प म रे, ध, रे, सा, ग म ध, प म प ध नी ध प, ग म, रे, सा

अंतरा

म प, ध, ध, सां, ध नी सां, रें रें सां ध प, ध नी ध प, ग म रे, सा

राग केदार

यह राग कल्याण थाट से निकलता है। इसकी जाति ओड़व-षाड़व है अर्थात् आरोह में पाँच तथा अवरोह में 6 स्वर लगते हैं। इसमें दोनों मध्यमों का प्रयोग

होता है। तीव्र मध्यम का प्रयोग केवल आरोह में और शुद्ध मध्यम का प्रयोग आरोह-अवरोह दोनों में होता है। कभी-कभी दोनों मध्यम साथ-साथ भी लगते हैं।

कल्याण थाट के अन्य रागों की भांति इसमें भी कोमल निषाद का प्रयोग होता है। इसमें गांधार गुप्त स्वर है, अर्थात् म से प को जाते समय बीच में गांधार की छाया मात्र आती है। केदार राग में गांधार स्वर पर कभी न्यास नहीं होता अर्थात् गांधार स्वर पर कभी नहीं ठहरते।

इस राग का वादी स्वर मध्यम और समवादी स्वर षड़ज है। इसके गाने का समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। इस राग की प्रकृति गम्भीर है एवं यह वीर रस का राग है।

ग
आरोह—सा म म प, ध प, नी ध, सां

अवरोह—सां, नी ध, प, मं प म, रे सा

पकड़—सा, म, म प, ध प म, प म, रे सा

आलाप राग केदार

स्थायी

सा म, म ग प, प, (प) म, प म, रे सा, म, प म, ध, ध, प (प) म, प ध प म, सां नी ध प, प, (प) म, रे सा

अंतरा

प, प, सां, रें सां, मं, रें, सां, पं, मं रें सां, सां नी

ध प, मं प ध नी ध प म, प म, रे सा

राग मालकौंस

यह राग भैरवी थाट से निकलता है। यह प्राचीन 6 रागों में से एक है। राग मालकौंस ओड़व जाति का राग है, अर्थात् इसके आरोह एवं अवरोह दोनों में पाँच-पाँच स्वर लगते हैं। ऋषभ और पंचम स्वर इसमें वर्जित हैं। इस राग में प्रयुक्त सभी स्वर कोमल हैं। इसका वादी स्वर मध्यम एवं समवादी स्वर षड़ज है। इसके गायन का समय रात्रि का द्वितीय प्रहर है। इस राग की प्रकृति गम्भीर है एवं यह

शांत रस का राग है।

आरोह—ऩी सा, ग म, ध, नी सां

अवरोह—सां नी ध, म, ग म ग सा

पकड़—म ग, म ध नी ध, म, ग सा

आलाप राग मालकौंस

स्थायी

नी

सा, म, ग म, ग सा, ध नी सा, म, ग म ध, ध म, ग ग म ध नी ध म,

ग म, ग सा

अंतरा

ग म ध, नी सां, ध नी सां, गं सां मं गं सां, गं सां, नी ध म, ग म,

ग सा

राग जौनपुरी

यह आसावरी थाट का राग है। इसकी जाति षाड़व-सम्पूर्ण है अर्थात् आरोह में छः स्वर एवं अवरोह में सात स्वर लगते हैं। इस राग में गांधार और धैवत कोमल तथा दोनों निषादों का प्रयोग होताहै, आरोह में शुद्ध और अवरोह में कोमल निषाद का। इसका वादी स्वर धैवत और समवादी गांधार है। राग जौनपुरी का न्यास-स्वर पंचम है। इसके गाने का समय दिन का द्वितीय प्रहर है। इस राग की प्रकृति चंचल है तथा यह करुण रस का राग है।

वर्तमान समय में जौनपुरी और आसावरी रागों में कोई विशेष अंतर नहीं है। केवल निषाद स्वर का आरोह में प्रयोग करने अथवा न करने से कोई विशेष अंतर नहीं आता, बल्कि दोनों राग एक समान ही प्रतीत होते हैं। हाँ, यदि पुराने ज़माने में गायी जाने वाली कोमल ऋषभ की आसावरी को ही हम आसावरी मानें तब जौनपुरी व आसावरी में स्पष्ट भेद मालूम पड़ता है। वर्तमान समय की आसावरी और जौनपुरी

में कोई विशेष भेद न होने के कारण ही आजकल शुद्ध ऋषभ की आसावरी का प्रचलन बहुत कम है।

आरोह—सा, रे म, प, ध नी सां

अवरोह—सां, नी ध, प, म ग, रे सा

पकड़—रे म प, नी ध प, ध, म प ग, रे म प

आलाप राग जौनपुरी

स्थायी

सा, रे म प, नी ध, प, म प ध, म प, ग रे सा,

सा रे म प सां, ध प, म प ध नी सां रे नी, ध प, सां ध म प, ग, रे, सा, रे म प

अंतरा

म प, ध ध, सां, ध, ध सां, सां रें, गं, रें, नी, ध प, प गं, रें, सां, रें, नी ध, प, म प ध, म प, ग, रे सा

राग तोड़ी

यह तोड़ी थाट का राग है। इसकी जाति षाड़व-सम्पूर्ण है, अर्थात् इसके आरोह में 6 स्वर और अवरोह में 7 स्वर लगते हैं। इसके आरोह में पंचम वर्जित है। इसमें ऋषभ, गांधार एवं धैवत कोमल तथा मध्यम और निषाद स्वर तीव्र लगते हैं। तोड़ी का वादी स्वर धैवत एवं समवादी स्वर गांधार है। इसका गाने का समय दिन का द्वितीय प्रहर है। इस राग की प्रकृति गम्भीर है तथा यह शांत रस का राग है।

राग तोड़ी की उत्पत्ति के विषय में एक प्रचलित किंवदंती है कि अमर स्वर-साधक बैजू बावरा ने अपनी परम प्रिय शिष्या, राजा मानसिंह की रानी, गूजरी के नाम पर सर्वप्रथम 'गूजरी तोड़ी' बनायी। गूजरी तोड़ी में पंचम स्वर वर्जित था और आज भी वर्जित है। कालांतर में संगीत-सम्राट तानसेन ने गायन में सुविधा हेतु इसके अवरोह में पंचम स्वर लगाना आरम्भ किया। उसी समय से इसका नाम 'मियाँ की तोड़ी' पड़ गया। आजकल 'मियाँ की तोड़ी' का ही अत्यधिक प्रचार है। तोड़ी

कई प्रकार की होती है जैसे गूजरी-तोड़ी, मियाँ की तोड़ी, मुल्तानी-तोड़ी, आसावरी-तोड़ी, भैरवी-तोड़ी, भूपाल तोड़ी, लक्ष्मी-तोड़ी, दरबारी-तोड़ी, बिलासखानी तोड़ी इत्यादि।

आरोह—सा, रे ग, मं ध, नी सां

अवरोह—सां नी ध प, मं ग, रे, सा

पकड़—ध ऩी सा, रे ग, रे सा मं ग, रे ग, रे सा

आलाप राग तोड़ी

स्थायी

सां, रें गं, रें, सां, रें, ध़, ध़ ऩी, सा, रे ग रे सा, सा ध,

ध प, मं ध, मं ग, रे ग, रे सा

अंतरा

मं, ग मं ध, सां, रें, गं रें, सां, ध नी सां रें गं, रे

मं गं रें गं, रें सां, मं ध, मं ग, रे ग रे, सा

राग गौड़ सारंग

यह कल्याण थाट का राग है। इसकी जाति सम्पूर्ण तथा वक्र है, अर्थात् आरोह और अवरोह में सातों स्वर लगते हैं। इस राग की चाल टेढ़ी-मेढ़ी है। इसका राग-वाचक स्वर-विन्यास ग, रे, म ग, प रे, सा है। इसका वादी स्वर गांधार तथा समवादी स्वर धैवत है। इसके गाने का समय दिन का द्वितीय प्रहर है। यह चंचल प्रकृति का राग है तथा शृंगार रस का उद्रेक है।

आरोह—सा, ग रे म ग, प मं ध प, नी ध सां

अवरोह—सां, ध नी, प ध, मं प, ग म, रे, प रे, सा

पकड़—नी सा, ग रे म ग, प रे, सा

आलाप राग गौड़ सारंग

स्थायी

सा, नी सा, ग रे, म ग, प रे, सा, ग रे, म ग, प मं, ध प, मं प, ग म,

रे ग रे म ग, प रे, सा

अंतरा

प, (प) सां, रें, सां, ध, ध, सां, रें सां, ध प, म ग, म प, सां, गं रें मं गं

पं रें, सां, ध (प), म ग, प रे, सा

राग मारवा

यह मारवा थाट का राग है। इसकी जाति षाड़व-षाड़व है। इस राग में ऋषभ स्वर कोमल तथा शेष स्वर तीव्र हैं। इसमें पंचम स्वर वर्जित है। इसका वादी स्वर ऋषभ एवं समवादी स्वर धैवत है। यह संधिप्रकाश राग है तथा सायंकाल के समय गाया जाता है। इसकी प्रकृति गम्भीर है तथा यह शांत रस का राग है। मारवा आश्रय राग है।

आरोह—सा रे॒, ग, मं ध, नी ध, सां

अवरोह—सां नी ध, मं ग, रे॒ सा

पकड़—ध मं ग रे॒, ग मं ग रे॒, सा

आलाप राग मारवा

स्थायी

सा, ऩी रे, मं ग रे॒, ग रे॒, ऩी रे॒ सा, ध मं, ध मं, ग रे॒ ग मं,

ग रे सा ऩी रे॒ ऩी ध़ म़ं ध़ सा।

अंतरा

म ग मं ध मं सां, नी रें॒ सां, नी रें॒, गं रें, मं गं रें॒ नी रें॒ सां

नी रें नी ध, मं ध नी ध मं ग रे, सा।

राग तिलककामोद

यह खमाज थाट का राग है। कुछ संगीत-शास्त्री इसे बिलावल थाट से भी मानते हैं। उनके मत से तिलककामोद में कोमल निषाद का प्रयोग नहीं होना चाहिये। प्रचार में भी कोमल निषाद का प्रयोग बहुत कम होता है क्योंकि कोमल निषाद के प्रयोग से देसराग की छाया अधिक पड़ती है। परन्तु अवरोह में ध, म, ग की स्वर-संगति एवं गांधार के प्रबल होने से इसे खमाज थाट से उत्पन्न मानते हैं। अपने विचार से दोनों मत तर्कसम्मत हैं। इस राग की जाति षाड़व-सम्पूर्ण है। इसके आरोह में धैवत वर्जित है। इस राग में शुद्ध स्वरों का प्रयोग होता है, कभी-कभी कोमल निषाद भी लगती है। इसका वादी स्वर ऋषभ तथा समवादी स्वर पंचम है। अपने विचार से इसका वादी स्वर गांधार और समवादी निषाद अथवा धैवत होना चाहिये क्योंकि गांधार इस राग में सबसे प्रबल स्वर है। ऋषभ व पंचम के सम्वाद से देसराग की छाया बहुत अधिक पड़ने की आशंका है। तिलककामोद एवं देसराग में अत्यधिक साम्य है। इसके राग-वाचक स्वर प़ ऩी सा रे ग सा हैं। इसकी प्रकृति चंचल है तथा यह शृंगार रस प्रधान राग है।

आरोह—सा रे ग सा, रे म प ध म प, सां

अवरोह—सां प ध म ग, सा रे ग, सा ऩी

पकड़—प़ ऩी सा रे ग, सा, रे प म ग, सा ऩी

आलाप राग तिलककामोद

स्थायी

प़ ऩी सा रे, ग सा, रे म ग, सा रे म ग, सा नी, प़ ऩी सा रे ग सा,

म प, ध, म ग, सा रे ग, सा ऩी, प़ ऩी सा रे ग सा।

अंतरा

म प ऩी प नी सां, प नी सां रें, ग सां रें म गं, सां रें गं सां नी, प नी

सां रे गं सां, सां प ध, म ग सा रे (प) म ग, सा नी, प़ ऩी सा रे ग सा।

राग पूर्वी

यह पूर्वी थाट का राग है। इसे दक्षिण में 'कामवर्धिनी' कहते हैं। इसकी जाति षाड़व-सम्पूर्ण है। इस राग के आरोह में पंचम स्वर वर्जित है। इसमें ऋषभ और धैवत स्वर कोमल लगते हैं और इसमें दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है। कोमल मध्यम का प्रयोग केवल आरोह में और तीव्र मध्यम का आरोह व अवरोह दोनों में होता है। इसका वादी स्वर गांधार एवं समवादी स्वर निषाद है। यह सायंकाल का संधिप्रकाश राग है। इसकी प्रकृति चंचल है तथा यह करुण रस का राग है।

रे̱
इसके राग-वाचक स्वर प ध̱ मं प, ग म ग हैं।

आरोह–सा, रे̱ ग मं, ध̱ नी सां

अवरोह–सां नी ध̱, प, म̱ं, ग, रे̱ सा

रे
पकड़– नी, सा रे̱ ग, म, ग, मं, ग, रे̱ ग, रे̱ सा

आलाप राग पूर्वी

स्थायी

रे̱ रे̱
ऩी, सा रे̱ ग, म ग, रे̱, सा, प ध̱ मं प, ग म ग, ध̱ मं ग रे̱

रे̱
सा प ध̱ मं प ग म ग रे̱ मं ग, मं ग रे̱ सा

अंतरा

मं ग मं ध̱ सां, नी रे̱ं सां नी रे̱ं ग रे̱ं, नी रे̱ं सां, नी रे̱ं नी ध̱,

रे̱
मं ध̱ नी, ध̱, प ध̱ मं प, ग म ग, मं ग रे̱ सा

राग दुर्गा (बिलावल थाट)

राग दुर्गा के दो प्रचलित प्रकार हैं। एक खमाज थाट से और दूसरा बिलावल थाट से निकलता है। दक्षिण में इस राग को 'सावेरी' कहते हैं। बिलावल थाट की दुर्गा का प्रचार अधिक है और उसी को दुर्गा के नाम से लोग जानते भी हैं। हम यहाँ उसी की चर्चा करेंगे।

बिलावल थाट से उत्पन्न दुर्गा राग की जाति ओड़व-ओड़व है, अर्थात् आरोह व अवरोह दोनों में पाँच-पाँच स्वरों का प्रयोग होता है। इस राग में गांधार एवं निषाद स्वर वर्जित हैं। इसका वादी स्वर मध्यम और समवादी षड़ज है। इसके गायन का समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। राग दुर्गा की प्रकृति चंचल है और यह शृंगार रस का राग है।

यह राग पावस ऋतु में अधिक अच्छा लगता है। इसकी अधिकांश आक्षिप्तिकाओं (बंदिशों) में दुर्गा-स्तुति अथवा पावस ऋतु का ही वर्णन मिलता है।

आरोह—सा रे म प ध सां

अवरोह—सां ध प म रे सा

पकड़—रे म प ध, म रे, प म, रे ध सा

आलाप राग दुर्गा (बिलावल थाट)

स्थायी

सा, रे म, रे सा, ध़ सा रे म प ध, म प ध म, प म रे, म रे, ध़ सा,

म रे म प ध, म प सां ध, ध म रे म, प ध म रे, ध़ सा।

अंतरा

म प ध़ सां, ध रें सां, प ध सां, ध म, रे म प ध सां, ध रें सां, रें मं,

रें सां, मं रें पं मं रें, सां, ध सां, ध, म प, ध म रे, प म रे, ध़ सा।

राग हमीर

यह कल्याण थाट का राग है। इसकी जाति सम्पूर्ण-सम्पूर्ण है। कल्याण थाट के अन्य रागों की भाँति इसमें भी आरोह में निषाद स्वर और अवरोह में गांधार

स्वर वक्र लगते हैं। कभी-कभी कोमल निषाद का प्रयोग भी शास्त्रसम्मत है। इसके गाने का समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। इसकी प्रकृति चंचल है और यह भक्ति रस प्रधान राग है।

सां

इसके रागवाचक स्वर म॑ प, ग म, ध हैं।

पूर्वकाल में संगीतशास्त्री हमीर, केदार, कामोद और छायानट आदि रागों को बिलावल थाट के राग मानते थे। वे इन रागों में तीव्र मध्यम का प्रयोग नहीं करते थे। उक्त रागों में कोमल निषाद का प्रयोग ध <u>नी</u> ध प अथवा ध <u>नी</u> प ही इस बात के प्रमाण हैं कि किसी समय यह राग बिलावल थाट के अंतर्गत थे और आज भी यह राग बिना तीव्र मध्यम के अच्छी तरह गाये जा सकते हैं। परन्तु कालान्तर में उक्त रागों में तीव्र मध्यम का प्रयोग होने लगा और यह राग कल्याण थाट में माने जाने लगे।

सां

आरोह—सा रे सा, ग म ध, नी ध, सां

अवरोह—सां नी ध प, म॑ प ध प, ग म रे सा

पकड़—सा रे सा, म॑ प, ग म ध

आलाप राग हमीर

स्थायी

नी नी

सा रे सा, म॑ प ग म ध, ध प, म॑ प, ग म ध प, ग म रे सा, सा ग,

ग म, म ध, ध नी, नी सां, सां नी ध प ग म ध प, ग म रे सा,

नी

म॑ प ग म ध।

अंतरा

प प सां, रें सां, ध नी सां <u>रें</u>, सां नी ध प, रें सां, ध प, गं मं रें सां,

नी

ध नी सां रें, सां नी, ध प, ग म ध, ध प, ग म रे सा म॑ प ग म ध।

राग बहार

बहार मूलरूप में फ़ारसी भाषा का शब्द है। राष्ट्रभाषा हिन्दी में बहार का पर्यायवाची शब्द बसंत है। परन्तु यह दोनों एकदम भिन्न राग हैं। बसंत राग भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्राचीनतम रागों में से है, अतः ऐसा मालूम होता है कि बहार राग की कल्पना कालांतर में यवन संगीतज्ञों द्वारा ही हुई।

बहार काफ़ी थाट का राग है। इसकी जाति ओड़व-षाड़व है। इसके आरोह में पंचम और ऋषभ एवं अवरोह में धैवत स्वर वर्जित हैं। इसका वादी स्वर मध्यम तथा समवादी स्वर षड़ज है। इसकी प्रकृति चंचल और यह शृंगार रस का राग है। बहार एक ऋतुराग है और इसकी आक्षिप्तिकाओं (बंदिशों) में बसंत ऋतु का ही विशेष वर्णन मिलता है।

बहार राग बागेश्वरी तथा कान्हड़ा के योग से बना है। इसके आरोह में बागेश्वरी और अवरोह में कान्हड़े का प्रभाव है। बहार राग किसी समय में सर्वाधिक प्रचलित राग था। इसी कारण लगभग सभी रागों में इसका मिश्रण किया गया। फलस्वरूप हिण्डोल बहार, बागेश्वरी बहार, भैरव बहार, बसंत बहार, जौनपुरी बहार तथा केदार बहार आदि रागों की रचना हुई।

नि॒

आरोह—सा, ग॒ म प ग॒ म, ध नी सां

अवरोह—सां नि॒ प म प ग॒ म, रे सा

नी

पकड़—म प ग॒ म, ध, नी सां

आलाप राग बहार

स्थायी

ऩी सा म, म प, ग, म रे सा ग॒ म ध, नि॒ प म, प ग॒, म रे, सा, सा ग॒,

म ध; नी सां, ध नी सां, नि॒ प, ग॒ म रे सा।

अंतरा

नी   नी̱ प
ग̱ म ध नी सां, ध नी सां रें नी सां नी ध, म ध नी सां ग̱ं मं रें सां

ध नी सां, नी̱ प, म प ग̱, म रे सा

प्रश्न व अभ्यास

(1) निम्नलिखित रागों की तुलना कीजिये—

राग भीमपलासी और बहार, राग केदार और हमीर

(2) पाठ्य क्रम में निर्धारित प्रत्येक राग की पकड़ और स्थायी-अन्तरा की 3-3 पंक्तियों की आलाप लिखिये।

अलंकार

शशिना रहितेव निशा, विजलेव नदी, लता विपुष्पेव।
अविभूषितेव कांता गीतिरलंकारहीना स्यात्।।

—अभिनवरागमंजरी

अर्थात् जिस प्रकार रात्रि बिना चन्द्रमा के, नदी बिना जल के, लता बिना पुष्पों के एवं स्त्री बिना आभूषणों के शोभायमान नहीं होती उसी प्रकार संगीत के सौंदर्य के लिये अलंकार परम आवश्यक है।

संगीत-शास्त्र में नियमबद्ध स्वर-विस्तार को अलंकार की संज्ञा दी गयी है। प्रचार में अलंकार को 'पल्टा' कहते हैं। अतः इस प्रकरण में अलंकार के स्थान पर उसके पर्यायवाची शब्द 'पल्टे' का ही प्रयोग करेंगे।

संगीत के छात्रों को प्रारम्भ में पल्टों द्वारा ही स्वर-ज्ञान का अभ्यास कराया जाता है। इन पल्टों द्वारा आलाप का विस्तार भी हो सकता है तथा इनके द्वारा विभिन्न प्रकार की तानों की उत्पत्ति भी होती है।

गायन-क्षेत्र में लाहौर के गायक स्व. उस्ताद बहरे वहीद ख़ाँ ने पल्टों द्वारा आलाप करने की एक नयी शैली को जन्म दिया। इनकी सम्पूर्ण गायकी पल्टों पर ही आधारित थी। युवा गायक अमीर ख़ाँ इस क्षेत्र में बहरे वहीद ख़ाँ के सही उत्तराधिकारी कहे जा सकते हैं।

मध्ययुग में कुछ विशेष पल्टे प्रचलित थे, जिन्हें मुस्लिम गायकों द्वारा 'मेहरखण्ड' की संज्ञा दी गयी है। वास्तव में यह उत्तर भारतीय संगीत में प्रचलित 49 कूटतानों के ही दूसरे रूप थे जिनको 'मेहरखण्ड' कहा गया। मेहरखण्ड केवल क्लिष्टतम पल्टों का ही संकलन है। आजकल इसका चलन नहीं के बराबर है।

यों तो सभी रागों में पल्टों का प्रयोग होता है, किन्तु सम्पूर्ण जाति के रागों में यह अधिक सुन्दर, कलापूर्ण एवं सरलता से लगाये जा सकते हैं। पल्टों के विस्तार

में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि जिस प्रकार का प्रथम स्वर-समूह (टुकड़ा) हो उसी चलन के और गिनती में उतने ही स्वरों के अन्य स्वर-समूह (टुकड़े) भी हों। पल्टों का अवरोह, आरोह की अपेक्षा कठिन होता है। कारण अवरोह में सब स्वर-समूह (टुकड़े) उल्टे लगते हैं। जैसे, यदि आरोह में एक स्वर-समूह सा ग रे सा है तो अवरोह में वह ग सा रे ग हो जायेगा।

पल्टे बनाने में निम्न 3 बातों पर ध्यान रखना चाहिये—

(अ) पल्टे का दूसरा चरण सदैव, प्रथम स्वरसमूह में प्रयुक्त प्रथम स्वर को छोड़कर होना चाहिए। जैसे यदि पहला स्वर समूह अथवा चरण सा ग रे सा है, तो दूसरा चरण सा स्वर को छोड़कर रे से शुरु करके, रे म ग रे होगा।

(आ) अवरोह में पल्टे की गति उल्टी हो जाती है। जैसे, यदि आरोह में प्रथम स्वर-समूह सा ग रे ग है तो अवरोह में इसका स्वर-विन्यास ग सा रे सा हो जायेगा।

(इ) राग की जाति के अनुसार ही पल्टों के स्वर-समूह होने चाहिये। अतः जो-जो स्वर किसी विशेष राग के आरोह एवं अवरोह में प्रयुक्त होते अथवा नहीं होते हैं, पल्टों में भी उन्हीं स्वरों का प्रयोग होगा। जैसे, सम्पूर्ण जाति वाले रागों के आरोह और अवरोह में सातों स्वर लगते हैं तो इनके पल्टों में भी सातों स्वरों का प्रयोग होगा। अतः इसके पल्टे इस प्रकार होंगे—सा रे ग, रे ग म, ग म प, म प ध, प ध नी, ध नी सां। किन्तु यदि राग भीमपलासी के पल्टे बनाने हों तो हमें सर्वप्रथम इस तथ्य पर विचार करना होगा कि वह किस जाति का राग है और उसके आरोह अवरोह में कौन-कौन स्वर वर्जित हैं। अतः उसके पल्टों में भी वही स्वर वर्जित होंगे। भीमपलासी राग ओड़व-सम्पूर्ण जाति का राग है। इसके आरोह में ऋषभ और धैवत स्वर वर्जित हैं और अवरोह संपूर्ण है। भीमपलासी का एक पल्टा देखिये—

आरोह—सा ग॒ म, ग॒ म प, म प नी॒, प नी सां

अवरोह—सां नी॒ ध, नी॒ ध प, ध प म, प म ग, म ग॒ रे, ग॒ रे सा

पाठकों की सुविधार्थ कुछ पल्टे नीचे दिये जा रहे हैं। पल्टों द्वारा तैयार की हुई गायकी और गायकी में मुख्यतः तानें सुनने में चाहे भली न लगें, किन्तु वह

वैचित्र्य अवश्य पैदा करती हैं। और संगत करने वाले सरंगिये के लिये तो जान की आफ़त ही है क्योंकि अन्य प्रकार की तानों का तो एक बार सुनने से अच्छे सरंगियों के दिमाग़ में नक्शा बन जाता है, लेकिन पल्टे की तान की संगत, जब तक सरंगिये को वही पल्टा याद न हो, होना असंभव है।

सरल पल्टे

आरोह– सा रे ग, रे ग म, ग म प, म प ध, प ध नी, ध नी सां

अवरोह– सां नी ध, नी ध प, ध प म, प म ग, म ग रे, ग रे सा

आरोह– सा रे ग सा रे ग म, रे ग म रे ग म प, ग म प ग म प ध, म प ध म प ध नी, प ध नी प ध नी सां

अवरोह– सां नी ध सां नी ध प, नी ध प नी ध प म, ध प म ध प म ग, प म ग प म ग रे, म ग रे म ग रे सा

अर्धक्लिष्ट पल्टा

आरोह– सा रे ग म रे, रे ग म प ग, ग म प ध म, म प ध नी प, प ध नी सां ध

अवरोह– सां नी ध प नी, नी ध प म ध, ध प म ग प, प म ग रे म, म ग रे सा ग

क्लिष्ट पल्टा

आरोह– सा ग रे ग सा रे ऩी सा, रे म ग म रे ग सा रे, ग प म प ग म रे ग, म ध प ध म प ग म, प नी ध नी प ध म प, ध सां नी सां ध नी प ध

अवरोह– सां ध नी ध सां नी रें सां, नी प ध प नी ध सां नी, ध म प म ध प नी ध, प ग म ग प म ध प, म रे ग रे म ग प म, ग सा रे सा ग रे म ग

मेहरखण्ड का एक पल्टा

आरोह– सा प म प ग म रे ग सा रे ग म ग रे सा, रे ध प ध म प
ग म रे ग म प म ग रे, ग नी ध नी प ध म प ग म प ध
प म ग, म सां नी सां ध नी प ध म प ध नी ध प म

अवरोह– सां म प म ध प नी ध सां नी ध प ध नी सां, नी ग म ग प
म ध प नी ध प म प ध नी, ध रे ग रे म ग प म ध प म
ग म प ध, प सा रे सा ग रे म ग प म ग रे ग म प

प्रश्न व अभ्यास

(1) अलंकार किसे कहते हैं और इसके सामान्य नियम क्या हैं?

(2) निम्नलिखित अलंकारों को पूरा कीजिये–

1. सा ग रे ग सा रे ऩी सा,
2. सा प म प ग म रे ग सा रे ग म ग रे सा,
3. सा रे ग म रे,
4. सा रे सा रे ग सा रे ग म,

उत्तर भारतीय संगीत की कुछ तालें और उनकी विभिन्न लय

त्रिताल

यह ताल 16 मात्रा की होती है। इसमें चार भाग होते हैं तथा प्रत्येक भाग में 4-4 मात्राएँ होती हैं। इसका पहला भाग सम, दूसरा भाग दूसरी ताली, तीसरा खाली और चौथा तीसरी ताली कहलाता है। ताल निम्न प्रकार से लिखी जायेगी—

पहला भाग				दूसरा भाग				तीसरा भाग				चौथा भाग			
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	ता	तिं	तिं	ता	धा	धिं	धिं	धा
×				2				0				3			

त्रिताल दुगुन

1	2	3	4	5	6	7	8
धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	तातिं	तिंता	धाधिं	धिंधा
×				2			
9	10	11	12	13	14	15	16
धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	तातिं	तिंता	धाधिं	धिंधा
0				3			

त्रिताल तिगुन

1	2	3	4	|	5	
धा धिं धिं	धा धा धिं	धिं धा ता	तिं तिं ता	|	धा धिं धिं	
×				|	2	
6	7	8	|	9	10	
धा धा धिं	धिं धा धा	धिं धिं धा	|	ता तिं तिं	ता धा धिं	
			|	0		
11	12	|	13	14	15	
धिं धा धा	धिं धिं धा	|	धा धिं धिं	धा ता तिं	तिं ता धा	
		|	3			
16						
धिं धिं धा						

त्रिताल चौगुन

1	2	3	4
धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	ता तिं तिं ता	धा धिं धिं धा
×			
5	6	7	8
धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	ता तिं तिं ता	धा धिं धिं धा
2			
9	10	11	12
धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	ता तिं तिं ता	धा धिं धिं धा
0			
13	14	15	16
धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	ता तिं तिं ता	धा धिं धिं धा
3			

झपताल

यह ताल 10 मात्रा की होती है और शूलताल में भी 10 मात्राएँ हैं। किन्तु झपताल की चलन व विभाजन शूलताल से भिन्न है। झपताल में 4 भाग होते हैं। पहले भाग में 2, दूसरे भाग में 3, तीसरे भाग में 2 और चौथे भाग में 3 मात्राएँ होती हैं। इसका पहला भाग सम, दूसरा भाग दूसरी ताली, तीसरा खाली और चौथा भाग तीसरी ताली कहलाता है। यह ताल विभिन्न लयों में निम्न प्रकार से लिखी जायेगी—

झपताल

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना
×		2			0		3		

झपताल दुगुन

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना	धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना
×		2			0		3		

झपताल तिगुन

1	2	3	4	5
धी ना धी	धी ना ती	ना धी धी	ना धी ना	धी धी ना
×		2		

6	7	8	9	10
ती ना धी	धी ना धी	ना धी धी	ना ती ना	धी धी ना
0		3		

झपताल चौगुन

1	2	3	4	5
धी ना धी धी	ना ती ना धी	धी ना धी ना	धी धी ना ती	ना धी धी ना
×		2		

6	7	8	9	10
धी ना धी धी	ना ती ना धी	धी ना धी ना	धी धी ना ती	ना धी धी ना
0		3		

एकताल

यह ताल 12 मात्रा की होती है तथा इसके 6 भाग होते हैं। हर भाग में दो मात्राएँ होती हैं तथा 4 ताली और 2 खाली होती हैं। इसके पहले भाग को सम, दूसरे को खाली, तीसरे को दूसरी ताली, चौथे को दूसरी खाली, पाँचवें को तीसरी और छठे को चौथी ताली कहते हैं। यह निम्न प्रकार से लिखी जायेगी—

एकताल

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	कत	त्ता	धागे	तिरकिट	धिन	नाना
×		0		2		0		3		4	

एकताल दुगुन

1	2	3	4	5	6
धिं धिं	धागे तिरकिट	तूना	कत्ता	धागे तिरकिट	धिं ना ना
×		0		2	

7	8	9	10	11	12
धिं धिं	धागे तिरकिट	तूना	कत्ता	धागे तिरकिट	धिं, नाना
0		3		4	

एकताल तिगुन

1	2	3	4	5
धिंधिं धागे	तिरकिट, तूना	कत्ता धागे	तिरकिट, धीं, नाना	धिंधिं धागे
×		0		2

6	7	8	9	10
तिरकिट तूना	कत्ता, धागे	तिरकिट, धिं, नाना	धिंधिं, धागे	तिरकिट तूना
	0		3	

11	12
कत्ता, धागे	तिरकिट धिं, नाना
4	

एकताल चौगुन

1	2	3
धिंधिं धागे तिरकिट,	तूना कत्ता,	धागे तिरकिट, धिं, नाना
×		0

4	5	6
धिं धिं धागे तिरकिट	तूना कत्ता	धागे, तिरकिट, धिं, नाना
	2	

7	8	9
धिंधिं, धागे तिरकिट	तू ना कत्ता	धागे, तिरकिट, धिं नाना
0		3

10	11	12
धिं धिं धागे तिरकिट	तूना कत्ता	धागे, तिरकिट धिं, नाना
	4	

चौताल

इसमें 12 मात्राएँ होती हैं तथा एकताल के समान 6 भाग होते हैं। चौताल और एकताल में अंतर केवल बोलों और उपयोग का है। चौताल के बोल मृदंग पर अच्छे लगते हैं तथा इसमें केवल ध्रुवपद गाये जाते हैं, जब कि एकताल में ख्याल गाया जाता है और यह तबले पर ही भली लगती है। चौताल निम्न प्रकार से लिखी जायेगी–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
धा	धा	दिं	ता	तिट	धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
×		0		2		0		3		4	

चौताल दुगुन

1	2	3	4	5	6
धा धा	दिं ता	तिट धा	दिं ता	तिटकत	गदिगन
×		0		2	
7	8	9	10	11	12
धा धा	दिं ता	तिट धा	दिं ता	तिटकट	गदि गन
0		3		4	

चौताल तिगुन

1	2	3	4	5
धा धा दिं	ता, तिट, धा	दिंता तिट	कत गदि गन	धा धा दिं
×		0		2
6	7	8	9	10
ता, तिट धा	दिंता तिट	कत गदि गन	धा धा दिं	ता तिट धा
	0		3	

11	12
दिंता तिट	कत गदि गन
4	

चौताल चौगुन

1	2	3	4
धा धा दिं ता	तिट धा दिंता	तिट कत गदि गन	धा धा दिंता
×		0	
5	6	7	8
तिट धा दिं ता	तिट कत गदि गन	धा धा दिंता	तिट धा दिंता
2		0	
9	10	11	12
तिट कत गदि गन	धा धा दिंता	तिट धा दिंता	तिट कत गदि गन
3		4	

धमार

यह ताल 14 मात्रा की होती है। इसमें केवल धमार नामक गीत ही गाया जाता है। धमार, ताल के साथ ही साथ, एक गायन-शैली का भी नाम है जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस ताल के 4 भाग होते हैं। इसका पहला भाग सम, दूसरा भाग दूसरी ताली, तीसरा भाग खाली और चौथा भाग तीसरी ताली कहलाता है। धमार ताल के बोल निम्न प्रकार से हैं–

धमार

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
क	धि	ट	धि	ट	धा	ऽ	ग	दि	न	दि	न	ता	ऽ
×					2		0			3			

धमारताल दुगुन

1	2	3	4	5	6	7
क धि	ट धि	ट धा	ऽ ग	दि न	दि न	ता ऽ
×					2	

8	9	10	11	12	13	14
क धि	ट धि	ट धा	ऽ ग	दि न	दि न	ता ऽ
0			3			

धमारताल तिगुन

1	2	3	4	5	6	7
क धि ट	धि ट धा	ऽ ग दि	न दि न	ता ऽ क	धि ट धि	ट धा ऽ
×					2	

8	9	10	11	12	13	14
ग दि न	दि न ता	ऽ क धि	ट धि ट	धा ऽ ग	दि न दि	न ता ऽ
0			3			

धमारताल चौगुन

1	2	3	4	5
क धि ट धि	ट धा ऽ ग	दि न दि न	ता ऽ क धि	ट धि ट धा
×				

6	7	8	9	10
ऽ ग दि न	दि न ता ऽ	क धि ट धि	ट धा ऽ ग	दि न दि न
2		0		

11	12	13	14
ता ऽ क धि	ट धि ट धा	ऽ ग दि न	दि न ता ऽ
3			

प्रश्न व अभ्यास

(1) एकताल और चौताल में क्या अन्तर है?

(2) यदि तीन ताल और झपताल को हम सम से आरम्भ करें तो कितनी आवृत्तियों के बाद दोनों के सम मिलेंगे?

संगीत-कला की उन्नति के लिए विचारणीय विषय

भारतवर्ष में, स्वतंत्रताप्राप्ति के पश्चात् एक नये युग का आरम्भ हुआ। राष्ट्र का ध्यान देश की आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं को दूर कर सांस्कृतिक, कलात्मक एवं औद्योगिक क्षेत्रों में असीम उन्नति कर उन्नत राष्ट्रों की श्रेणी में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करने की ओर केन्द्रित हुआ है।

संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला आदि सभी ललित कलाएँ सदैव से ही भारत में अपने उत्कर्ष पर रही हैं। भले ही समय-समय पर उपस्थित संक्रान्ति-कालों में इनकी धारा कुछ समय के लिये अवरुद्ध-सी भासित हुई हो, किन्तु यहाँ के जन-जीवन में यह इस प्रकार आत्मसात हो चुकी हैं कि वह अवरोध सदैव क्षणिक तथा अस्थायी ही रहा। ब्रिटिशकाल में इन कलाओं के प्रति शासन की उपेक्षा से इन कलाओं में अपेक्षित प्रगति नहीं हो सकी, यह सत्य होते हुए भी इतना तो निर्विवाद है कि जन साधारण तथा कलाओं पर परम्परा से जीवन यापन करने वाले कलाकारों ने उन्हें नष्ट नहीं होने दिया। अन्य ललित कलाओं की भाँति संगीत भी परम्परागत संगीतज्ञ-परिवारों, जन-गायकों और संगीत-प्रेमियों की अभिरुचि, उनके अभ्यास और प्रदर्शन के साथ-साथ जीवित रहा। आज झंझावातों के समाप्त हो जाने पर पुनः जनता और जनवादी सरकार का सहारा पाते ही संगीत-कला की उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो रहा है। यह हर्ष एवं संतोष की बात है।

जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं कि राज्य के प्रश्रय के अभाव में संगीत-कला की उन्नति तीव्रगति से नहीं हुई और स्वार्थ, अशिक्षा एवं संकीर्णतावश अनेक बड़े-बड़े उस्तादों की कला उन्हीं तक सीमित रह गई। कला को व्यक्तिगत स्वार्थ की वस्तु मानकर उन्होंने कला और समाज के बीच में एक खाई सी डाल दी। उन उस्तादों

के चारों ओर व्याप्त विलासितापूर्ण, कामुक, अश्लील एवं गंदे वातावरण के कारण सामान्य जन की दृष्टि में गाना-बजाना एक हेय चीज़ थी। घरानेदार चीजें जन-साधारण के लिये स्वप्न हो गयीं और संगीत दरबारों की शोभा मात्र रह गया।

ऐसी विषम परिस्थिति में भी देशी राजाओं और रईसों ने संगीत कला की उन्नति में पर्याप्त योग दिया, यह निर्विवाद है। रामपुर, जयपुर, बड़ौदा, ग्वालियर आदि के दरबारों में बड़े-बड़े संगीतज्ञों को प्रश्रय व प्रोत्साहन मिला और कला की उन्नति भी हुई।

संगीत-कला की इस शोचनीय अवस्था के काल में ही आधुनिक भारतीय संगीत के उद्धारक सर्वश्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, विष्णु नारायण भातखण्डे, ठाकुर नवाबअली, राजा भैया पूछवाले—जैसे संगीतमनीषी अवतरित हुये। संगीत-कला की शिक्षा एवं उन्नति की समुचित व्यवस्था के अभाव की पूर्ति के लिये ग्वालियर, लखनऊ और बड़ौदा में संगीत के उच्चकोटि के विद्यालय स्थापित हुये।

आज भी कोई प्रगति संगीत-कला की नहीं हो सकी है। अतः यह विचारणीय है कि किस प्रकार संगीत-कला के प्रति जन-साधारण की अभिरुचि को जाग्रत किया जाय। प्रस्तुत लेख में हम उक्त अभीष्ट की सिद्धि के मार्ग का ही विवेचन करेंगे।

संगीत में एकरूपता—आज गायन-शैलियों में काफी विविधता आ गयी है। प्रत्येक गायक स्वतन्त्र रूप से गाकर श्रोताओं पर अपना प्रभाव जमाने का प्रयास करता है। कोई पाण्डित्य-प्रदर्शन हेतु आक्षिप्तिका (बंदिश) आरम्भ करने के पूर्व काफी समय तक आलाप प्रस्तुत करता है, तो कोई मुखड़ा कहते ही तानों पर उतर आता है। सुन्दर बंदिशों से तो जैसे इनका परिचय ही नहीं है। प्रायः गायक केवल आक्षिप्तिका की प्रथम पंक्ति की अवतारणा ही अपना गायन-धर्म मानते हैं। रागों के समय और उनके वादी, समवादी स्वरों में भी मतभेद है। कहीं मालकौंस दिन में और कहीं रात्रि में गाया जाता है। जैसे भीमपलासी में धैवत शुद्ध है किन्तु कोई-कोई संगीतज्ञ इसमें कोमल धैवत का प्रयोग करते हैं और कहते हैं कि यह हनुमंत मत है। अतः यह निर्विवाद सत्य है कि आज गायन-शैली में एकरूपता होने के साथ विविधता भी विद्यमान है।

शास्त्रीय संगीत में परिमार्जन एवं प्रगति हेतु यह आवश्यक है कि देश के संगीतशास्त्री एवं विज्ञ नवोदित कलाकारों का इस दिशा में एक निश्चित मार्ग-प्रदर्शन करें। इस बात की भी आवश्यकता है कि अखिल भारतीय स्तर के संगीत-सम्मेलनों में संगीतशास्त्रियों को आमंत्रित कर इन समस्याओं पर विचार-विमर्श किया जाये।

नये रागों का उद्भव—वर्तमान युग में संगीत-क्षेत्र में नये-नये रागों का उद्भव हो रहा है, जो निश्चय ही प्रगति की ओर एक डग है। यहाँ इस प्रवृत्ति की आलोचना करना हमारा लक्ष्य नहीं है। परम्परा, प्रगति और प्रयोग कलाओं के विकासक्रम के तीन महत्वपूर्ण डग हैं। कला का प्रथम चरण भी प्रयोग ही होता है। कालांतर में नियमबद्ध होने पर वह ही परम्परा का निर्माण करता है। शास्त्रीय संगीत के क्रमिक विकास को देखने से ज्ञात होता है कि संगीत में किस-किस प्रकार के प्रयोग हुए। जैसे रागों के विवादी स्वर भी पहले प्रयोग ही रहे होंगे, पर आज संगीत में इनका एक निश्चित स्थान बन गया है। शास्त्रों में भी विवादी स्वरों के सम्बंध में कहा गया है, "सुप्रमाणयुतो रागे विवादी रक्तिवर्धकः।" रागों के प्रचलित रूप भी मध्य युग की अनुपम भेंट ही तो हैं।

प्रयोग कभी-कभी घातक भी होते हैं। आज संगीत-क्षेत्र में लब्धप्रतिष्ठ गायक जनता के सम्मुख अधिकतर कोई नवीन राग ही प्रस्तुत करते हैं जो सर्वथा अप्रचलित होते हैं। ये कलाकार स्वतन्त्रता पूर्वक इन रागों का प्रदर्शन करते हैं और श्रोता समझते हैं कि इस राग में ऐसा ही होता होगा। इस प्रवृत्ति से आशंका यह है कि नये-नये संकीर्ण व नियमहीन रागों की वृद्धि होगी। जनता का पुराने रागों से सम्बंध टूट जायेगा। संगीत में उच्छृंखलता आ जायेगी।

इस प्रश्न की ओर सरकार द्वारा स्थापित कला-अकादमियों का ध्यान आकृष्ट होना चाहिये। अकादमी को देश के कतिपय विज्ञ संगीत-शास्त्रियों की एक समिति का निर्माण करना चाहिये जो ऐसे नवीन रागों के रागात्मक औचित्य के सम्बन्ध में अपना निर्णय दे। समिति द्वारा स्वीकृत राग ही सार्वजनिक रूप से गाये-बजाये जायें।

संगीत में चमत्कार तत्व—विशेषकर नवोदित संगीतकारों का ध्यान हम इस ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। आज गायक प्रायः परंपरामूलक शास्त्रीय संगीत-गायन की अपेक्षा गाने में चमत्कार प्रदर्शन के बल पर श्रोताओं को भरमाने की चेष्टा करते हैं। जैसे गायक गाते-गाते प्रायः गायन में कण्ठ से सितार के झाले की नकल करने लगते हैं। कुछ गायक गाते समय सारंगी की अपेक्षा तबले पर अधिक ध्यान देते हैं और तबलावादक के साथ लड़न्त करने लगते हैं। जब गायक ग म प ग म प ग म प प सरगम करते हैं, तब तबलावादक धा तिट् धा तिट् धा धा तिट आदि बोल से उसकी संगत करते हैं। ऐसे ही तबलावादक भी प्रदर्शन के समय शास्त्रीय ढंग से न बजा कर श्रोताओं पर प्रभाव डालने के लिये तबले पर फूल बरसाने, छोटी लाइन चलाने, मोटर साइकिल चलाने आदि क्रियाओं का प्रदर्शन करते

हैं और जनता उसी से प्रसन्न होकर संगीत के प्रति अपने अज्ञान का परिचय देती है। यह प्रवृत्ति संगीत कला के प्रचार में अत्यंत घातक है। प्रायः इन्हीं कारणों से गुणी, गम्भीर और ज्ञानी कलाकार तक मंच से उखड़ते हुए देखे गये हैं।

माइक्रोफोन का प्रयोग—माइक्रोफोन वैज्ञानिक युग की देन है। यह आज सार्वजनिक जल्सों का एक आवश्यक अंग बन गया है। संगीत सम्मेलनों में भी इसका वही महत्व है। किन्तु जहां इससे एक लाभ यह है कि हज़ारों श्रोता रससिद्ध कलाकारों की कला का सहज ही में आनन्द ले सकते हैं, वहीं एक हानि भी हुई है कि इसके अति प्रयोग के कारण गायकों के कण्ठ में पहले जैसा ओज-तेज नहीं रह गया है। प्रायः देखा गया है कि 40-50 व्यक्तियों की गोष्ठी में भी श्रोताओं को गायकों का गायन सुनने में असुविधा होती है। अतः छात्रों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। इस बात की भी आवश्यकता है कि गायकों के कण्ठस्वर में इतना ओज-तेज हो, जिससे वह थोड़े-से जन समूह को बिना माइक्रोफोन के अपना गाना सुना सकें। यह तथ्य भी ध्यान में रखना चाहिये कि हर स्थान पर माइक्रोफोन नहीं मिलता और मिल भी गया तो उसके बिगड़ जाने की आशंका बराबर बनी रहती है।

संगीत गोष्ठियाँ

संगीत-गोष्ठियों का सुव्यवस्थित रूप में होना भी संगीत के अत्यंत हित में है। इन गोष्ठियों से जहां एक ओर संगीतज्ञों को एक दूसरे का गायन सुन कर अपनी कला को परिष्कृत करने का सुअवसर मिलता है, वहीं दूसरी ओर रसिक श्रोताओं को भी संगीत के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्व के निरूपण का अवसर मिलता रहता है।

आजकल गोष्ठियों का स्वरूप ही बदल गया है। गोष्ठियाँ दलबन्दी का अखाड़ा मात्र बन गयी हैं। गोष्ठियों में संगीतज्ञ प्रायः एक दूसरे की आलोचना करते देखे जाते हैं। कलाकार अपने प्रतिद्वन्द्वी कलाकारों के गायन व वादन में विघ्न डालने का प्रयत्न भी करते हैं। अथवा उसके गायन आरम्भ करते ही दल-बल सहित गोष्ठी से उठकर चले जाते हैं। पुराने समय में कलाप्रदर्शन के समय महफ़िल से उठकर जाना 'कस्रे शान' समझा जाता था।

ग्रेट ब्रिटेन के महान संगीतशास्त्री श्री एलविन वुल्फ़ ने सफल संगीतज्ञ बनने के विषय में एक स्थान पर लिखा है, 'वे कलाकार वास्तव में भाग्यशाली हैं जिन्हें प्रायः गोष्ठियों में भाग लेने का अवसर मिलता रहता है। कला के विकास के लिए

यह प्रथम सीढ़ी है। अगर गोष्ठियों को संगीतज्ञों के लिये संजीवनी कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी।'

संगीत और अध्यवसाय

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, संगीत एवं साहित्य का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। कलापूर्ण, सुन्दर, रम्य एवं विचारयुक्त साहित्य ही संगीत को शाश्वत और पूर्ण करने में समर्थ होता है। कोमलकांत पदावलियाँ संगीत की अविरल रस-धार में सम्मोहन शक्ति का संचार करती हैं।

वर्तमान समय में देश-विदेश में संगीत की अन्यान्य धारायें प्रवाहित हो रही हैं। छात्रों में अगर इन धाराओं को जानने की जिज्ञासा न होगी तो उनका ज्ञान-कोष सर्वथा अपूर्ण ही रह जायेगा। आज अंतर्राष्ट्रीय संगीत में समन्वय स्थापित कर उसे भारतीय परंपरा के उपयुक्त बनाना है। इस हेतु यह आवश्यक है कि छात्र संगीत-संबंधी पत्र-पत्रिकाओं का यथासाध्य अध्ययन किया करें। हमें विश्व के सम्मुख अपनी सांस्कृतिक चेतना को प्रस्तुत करना है। इस हेतु भी संगीत-क्षेत्र में आज अध्यवसाय की महान आवश्यकता है।

संगीत विद्यालय

अंत में संगीत-शिक्षा की वर्तमान गतिविधि पर भी प्रकाश डालना असंगत न होगा। आजकल प्रायः अनेकानेक नित नवीन शिक्षा-संस्थाओं का उदय हो रहा है। इन सबका जीवनकाल अगर आँका जाय तो यह प्रामाणिक तथ्य प्रकाश में आयेगा कि इनमें से 90 प्रतिशत विद्यालयों की आयु केवल वर्ष या दो वर्ष ही रहती है। इन विद्यालयों में अधिकतर योग्य शिक्षकों का अभाव भी देखा गया है। छात्रों का संगीत-प्रेम उनको इन विद्यालयों में खींच ले जाता है और यह बेचारे जिज्ञासु इस ज्ञान गंगा में एक गोता भी नहीं लगा पाते कि विद्यालय किन्हीं अज्ञात अथवा ज्ञात कारणवश बंद हो जाता है। फिर इन विद्यालयों का परम लक्ष्य येन केन प्रकारेण छात्रों को परीक्षा में उत्तीर्ण कराना ही होता है। स्पष्ट रूप से यह विद्यालय केवल व्यावसायिक दृष्टि से ही खोले जाते हैं। अतः संगीत कला के हित में ऐसे अधकचरे विद्यालय समाप्त करना ही उचित है। छात्रों को भी ऐसे विद्यालयों से सतर्क रहना चाहिए।

शास्त्रीय संगीत में गतिरोध और उसके कारण

'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयम् संगीतमुच्यते' के अनुसार गीत, वाद्य और नृत्य तीनों एकत्र हो संगीत का सृजन करते हैं। प्राचीन संगीतकारों ने संगीत को ईश्वर का रूप माना है, और नाद को ब्रह्म का। संगीत को साधना का साध्य मान कर ही कदाचित् भगवान ने नारद से यह कहा था, 'मद्भक्ता यत्र गायंती तत्र तिष्ठामि नारदः।' अर्थात् मेरे भक्तों की स्वर-लहरी जहां थिरकती है, हे नारद! आप मुझे वहीं उपस्थित समझिये। आज के वैज्ञानिक भी इस भावनात्मक सत्य को स्वीकार करने लगे हैं और उनका कहना है कि संगीत की स्वर-लहरियाँ तरंगाकार हो जड़ और चेतन सृष्टि को घेर कर, उन पर अपना प्रभाव छोड़ती हैं। इसलिये संगीत के इतिहास में पत्थर के पिघलने, नदी के प्रवाह के रुकने, पानी बरसने, हवा के चलने, सूखे वृक्ष के हरे होने एवं दीपक के प्रज्ज्वलित हो उठने की किंवदंतियाँ प्रचलित हो गयी हैं। इसी प्रकार जंगल जगत में वीणा के नाद से पशु-पक्षियों का मोहित होना, भक्त और भगवान के एकाकार होने और रण में जुझारू नाद पर अपनी बलि देने की कहानियां भी कम प्रचलित नहीं हैं।

संगीत रस-वाद से बहुत अधिक प्रभावित है। इसलिये शास्त्रकारों ने उसे बुद्धि का आनन्द न मान, आत्मा का अनहद नाद माना है। भारतीय जीवन और संस्कार तो संगीत की स्वर-लहरी में इस प्रकार गुंथे हुए हैं कि जन्म से लेकर मृत्यु तक के सारे व्यापार ही संगीतमय बन जाते हैं। यहां तक कि दारुण शोक में भी कबीरपंथी शव को गा-बजाकर ले जाते हैं। बेटी की बिदा होते समय गाये जाने वाले बिदा गीत जिन्होंने सुने हैं उन्हें फिर रसमय संगीत बताने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि मंत्र-दृष्टा ऋषियों से लेकर हिंसक

बहेलियों तक के जीवन संगीत से ओत-प्रोत हुए हैं। इतिहास इसका प्रमाण है।

संगीत की सुलभ साधना—आधुनिक काल में मनुष्य के पास इतना समय नहीं है कि वह संगीत की शास्त्रीयता का अध्ययन कर उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म अंगों को भी समझ सके। अतएव आज का संगीत सुलभ साधना का विषय बन चुका है। प्राचीन काल में संगीत में आंतरिक तन्मयता का विशेष महत्व था। आज के हल्के-फुल्के गानों में इस अंतरस्थ रसस्रोत का प्रायः अभाव ही रहता है। यही कारण है कि छोटे-छोटे गीत गन्ने की गंडेरियों की तरह अपना थोड़ा-सा रस उड़ेल कर ही पुराने पड़ जाते हैं और उनमें नित-नवीन रसोद्रेक का भाव न होने के कारण एक प्रकार का बासीपन आ जाता है। आफ़ताबे मौसीक़ी स्व. उस्ताद फ़ैयाज़ खाँ के शब्दों में, ऐसा संगीत सरलता से सीखा और भूला जा सकता है।

वर्तमान युग ने अपनी सुविधाओं के अनुकूल ही संगीत को भी अपने ढाँचे में ढाल लिया है और अब संगीत में स्वर से अधिक शब्दों को महत्व दिया जाने लगा है। यही कारण है कि जहां पहले संगीत की एक ही रसमयी धारा श्रोताओं को घंटों आप्लावित करने में सफल हो जाती थी वहां आज कोई भी गाना साढ़े तीन या चार मिनट से अधिक जन-मन-रंजन नहीं कर पाता। यद्यपि चित्रपटों ने अपनी चित्रात्मकता द्वारा संगीत की संवेदना के साथ प्रसंगानुकूल पहाड़, नदी और झरनों आदि के स्थूल आधारों को जोड़ कर उसे और सरस बनाने की चेष्टा की है, किन्तु वह रसात्मकता उत्पन्न करने में वह भी असफल रहे, जो प्राचीन संगीतज्ञों की एकांत साधना से निःसृत होती थी।

इसी प्रकार आज सरल संगीत के साथ विविध वाद्यों का सहयोग और उसमें काव्य की शब्द-शक्ति को सम्मिलित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई है। हो सकता है कि इसके पीछे भी आनन्द से अधिक आर्थिक वृत्ति छिपी हो, जो आज के युग का अभिशाप है।

संक्षेप में, आज के वैज्ञानिक युग में हल्के-फुल्के सरल संगीत का चलन काफी बढ़ा है और वर्तमान वातावरण में उसका स्वागत भी हुआ है। किन्तु कला और साधना की दृष्टि से संगीत की अवनति ही हुई है। अतएव संगीत के विकास के लिये यह आवश्यक हो गया है कि स्वतंत्र भारत में शास्त्रीय संगीत का प्रवाह जन-जन का मनोरंजन करे। इसीलिये शास्त्रीय संगीत के अभ्युत्थान पक्ष पर संगीतज्ञों को सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाना होगा। भारतीय संगीत में अभ्युत्थान पक्ष पर विचार करते समय हमें निम्न बातों पर ध्यान देना होगा—

गायन में समय का विचार—आज के वैज्ञानिक युग में मानव प्रत्येक वस्तु को संक्षेप में अपनाने का यत्न करता है। उसके पास इतना अवकाश नहीं है कि वह हर वस्तु को समझने और उसे पाने हेतु समय लगाये। जिस प्रकार भावुक दर्शक सुन्दर चित्र को देख कर क्षण भर में ही आनन्द प्राप्त कर लेता है और उसे इस बात पर मनन करने का अवकाश नहीं रहता कि चतुर चित्रकार ने कितने समय तक कल्पना-लोक में डूब-उतरा कर अपनी तूलिका चलाई है, उसी तरह संगीत में अभिरुचि रखनेवाले भी थोड़े समय में ही संगीत रूपी रससागर में गोता लगाना चाहते हैं। चित्रपटीय और सरल संगीत में थोड़े समय में ही संतोष हो जाता है। यही कारण है कि आज समाज में सरल संगीत एवं चित्रपटीय संगीत की मांग सर्वाधिक है।

दूसरी ओर हमारे शास्त्रीय संगीतज्ञ एक प्रोग्राम में 1 घण्टे से कम गाना परम्परा के विरुद्ध समझते हैं। परिणामस्वरूप एक घण्टे के गायन में बार-बार विभिन्न क्रियाओं की पुनरावृत्ति होती है, जो श्रोताओं को उबा देती है। शनैः-शनैः शास्त्रीय संगीत की ओर से लोक-रुचि समाप्त होने के कई कारणों में से एक यह भी है।

शास्त्रीय संगीत के अभ्युत्थान हेतु यह आवश्यक है कि विज्ञ गायक कम से कम समय में जनता के सम्मुख अपनी उत्कृष्ट कला को प्रस्तुत करने का प्रयास करें। कलाकारों के लिये 10 मिनट के कला प्रदर्शन हेतु कम से कम 4 घण्टे का अभ्यास अपेक्षित है। इतना रियाज़ रोज़ करने के बाद ही, कोई कलाकार 10 मिनट में प्रतिक्षण नई बारीकियाँ प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकेगा। इससे श्रोता ऊबेंगे नहीं और शास्त्रीय संगीत की ओर उनकी अभिरुचि में भी वृद्धि होगी।

भाव-पक्ष एवं राग-रस का समन्वीकरण

हम ऊपर कह चुके हैं कि कला की सर्वांगीण स्थापना के लिये अन्य वस्तुओं के साथ उसका भाव-पक्ष भी प्रबल होना चाहिए और तदनुरूप रस का कलापूर्ण समावेश भी अति आवश्यक है। संगीत में गायक द्वारा आक्षिप्तिका (बंदिश) के बोलों के भावों से जिस रस का उद्रेक होना हो उसी रस में विभोर होकर गाना उचित है।

प्रायः देखा गया है कि प्रत्येक शास्त्रीय संगीतज्ञ की अपनी विशेष गायकी होती है और वह प्रत्येक राग और बंदिश को गाने में अपनी उसी गायकी का प्रयोग करता है। फलस्वरूप प्रत्येक राग और प्रत्येक काव्य का प्रभाव एक ही होता है और इससे कभी-कभी श्रोताओं में गाने की ओर से विरक्ति सी होने लगती है।

अतः संगीत के अभ्युत्थान के लिये गीत और उसके रस में समन्वीकरण अति आवश्यक है।

स्वर-साधना—सभी ललित कलाओं में निखार लाने के लिये निरंतर साधना की अत्यधिक आवश्यकता है। संगीत क्षेत्र में भी गायन को प्रभावशाली बनाने के लिये स्वर-साधना नितान्त आवश्यक है। किंतु वर्तमान काल में संगीतज्ञों में स्वर-साधना का प्रायः अभाव ही रहता है। आज शास्त्रीय संगीत में लोकरुचि कम होने का एक कारण यह भी है।

प्राचीन काल में गहन चिंतन के पश्चात् ही ध्रुवपद शैली का आविष्कार किया गया था। स्वर पर ठहराव एवं मींड द्वारा एक स्वर से दूसरे स्वर पर जाना ही ध्रुवपद शैली की विशेषता है। ख़्याल अंग की गायकी में इसका अभाव है। दूसरे शब्दों में जब गायकों में ध्रुवपद गाने की क्षमता न रही तो वे ख्याल गाने को विवश हो गये। आजकल ख़्याल-गायन का ही अधिक प्रचलन भी है। वस्तुतः इसी कारण आजकल अधिकतर गायकों में प्रायः स्वर-साधना का अभाव परिलक्षित होता है। अन्यथा गायक अगर सुरीला है और स्वर पर ठहरता है, तो कोई कारण नहीं कि उसका गायन श्रोताओं पर अपना प्रभाव न डाल सके।

ख़्याल-गायकी और साहित्य—आदिकाल से संगीत और साहित्य का अटूट सम्बन्ध चला आया है। ख़्याल, ठुमरी, दादरा, टप्पा आदि की बंदिशों में प्रयुक्त साहित्य पर विचार करना ही यहां हमारा उद्देश्य है।

गायनशैली के साथ ही गीत भी सुन्दर और काव्यमय हो तो संगीत-प्रदर्शन में चार चांद लग जाते हैं। प्रारम्भ में ध्रुवपद और धमार के गीतों की शब्द योजना काफी सुन्दर और ललित थी। किन्तु कालांतर में संगीतज्ञों में शिक्षा का अभाव होने के कारण उन्होंने इस ओर ध्यान नहीं दिया। उनको गीतों की जैसी सामग्री मिली उन्होंने उसका प्रयोग अपनी समझ के अनुसार किया तथा शागिर्दों को भी वैसे ही बताया। शागिर्द भी उसे वैसे ही गाते चले आ रहे हैं। प्रायः देखा गया है कि गायक गाते-गाते जहां भी गीत की पंक्तियाँ भूल जाते हैं, वह चाहे स्थायी हो या अंतरा, वे केवल एक पंक्ति 'जब से गयो मोरी सुधि ही न लीन्हीं' गाकर गायन समाप्त कर देते हैं।

एक बात और, आधुनिक संगीत-ग्रन्थकारों से भी संगीत-ग्रंथों में भाषा-संबंधी अशुद्धियाँ हो जाती हैं। उन्होंने जो भी बंदिशें जैसी सुनीं उन्हें वैसा ही ग्रन्थ में उतार दिया। जैसे यमन-कल्याण की एक बंदिश के बोल "लंगर तुरक जिन छुओ" को बिल्कुल वैसा ही छाप दिया है। यह विचारणीय प्रश्न है कि क्या श्रीकृष्णजी

के समय में तुरक (मुसलमान) भारत में थे? इतिहास के आधार पर हम कह सकते हैं कि नहीं थे। वास्तव में यह बोल होना चाहिये "लंगर तु कर जिन छुओ।"

आज संगीत में शुद्ध-सरस और सुन्दर साहित्य के प्रयोग की आवश्यकता है। तभी श्रोतागण गायन में आनन्द उठाकर इस ओर आकृष्ट हो सकेंगे। आधुनिक काल में इस ओर संगीतसृष्टाओं का ध्यान गया है और कुछ सुन्दर बंदिशें भी बनी हैं। किन्तु यह अभी नगण्य हैं। संगीत-क्षेत्र में इस अभाव की पूर्ति होना अति आवश्यक है।

विसंगत-हाव-भाव—प्राचीन गायकों द्वारा गायन में मुखविलास एक आवश्यक अंग समझा जाता था। वह गायन में मुद्रा-दोष यथाशक्ति न लाने का प्रयास भी करते थे। कुछ उस्तादों ने यहां तक बताया है कि मुद्रा दोष दूर करने हेतु उन्हें शीशे के सम्मुख बैठाकर रियाज़ कराया जाता था। किन्तु आजकल गायकों में इसका प्रायः अभाव मिलता है। शास्त्रीय संगीत के अप्रचलित होने का एक कारण यह भी है। नवोदित कलाकारों को इसकी ओर ध्यान देना चाहिये।

'संगीत रत्नाकर' में गायक के गुणों और अवगुणों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है, जिसे हम छात्रों के लाभ के लिए नीचे दे रहे हैं।

गायन के गुण

हृद्यशब्दः सुशारीरो ग्रहमोक्षविचक्षणः।
रागरागांगभाषांगक्रियांगोपांग कोविदः।।
प्रबंधगाननिष्णातो विविधालप्तितत्ववित्।
सर्वस्थानोच्चगमकेष्वनायासलसद्गतिः।।
आयत्तकण्ठस्तालज्ञः सावधानो जितश्रमः।
शुद्धच्छायालगाभिज्ञः सर्वकाकुविशेषवित्।।
अपारस्थायसंचारः सर्वदोषविवर्जितः।
क्रियापरोऽजस्रलयः सुघटो धारणान्वितः।।
स्फूर्जन्निर्जवनो हारिरहः कृद्भजनोद्धुरः।
सुसंप्रदायो गीतज्ञैर्गीयते गायनाग्रणीः।।

भावार्थ—जिस गायक की आवाज मधुर व सुरीली तथा हृदय को मोहने वाली हो, राग के स्वरूप को व्यक्त करने का सहज गुण जिसकी वाणी में हो, जो ग्रह एवं न्यास के नियमों का ज्ञाता हो, राग-रागांग आदि का पंडित हो, प्रबन्ध-गायन

है। ऋग्वेद में ही वीणा, वंशी, मृदंग, डमरू आदि का उल्लेख है। सामवेद गायन में सर्वप्रथम केवल उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तीन स्वरों का ही प्रयोग होता था। किन्तु कालान्तर में, वैदिक काल में ही एक-एक स्वर की वृद्धि होती गयी और "सप्त स्वरांस्तु गीयंते" के अनुसार संगीत में सात स्वरों का प्रयोग आरम्भ हो गया था। इस काल में गान के साथ ही नृत्य कला का भी सम्यक् प्रचार था। लिंग पुराण में शिव के मुख्य गण नंदिकेश्वर द्वारा नृत्यकला सम्बन्धी 'भरतार्णव' नामक एक विशद ग्रंथ लिखे जाने का उल्लेख मिलता है। 'अभिनय दर्पण' में 'भरतार्णव' की ही संक्षिप्त टीका की गयी है। वैदिककालीन मूर्तियों में नृत्य की मुद्राएँ प्रचुर संख्या में मिली हैं। अस्तु, इस काल में गायन, वादन और नृत्य सम्बन्धी कलाओं का आरम्भ ही नहीं हो गया था, बल्कि यह निश्चित रूप से प्रगति-पथ पर बढ़ रहीथीं।

प्राचीन काल (1000 वर्ष ई. पू. से 800 ई. तक)

इस काल को संगीत-इतिहासकारों ने 'जनपद युग' की भी संज्ञा दी है। इस काल के मुख्यतः दो भाग किये जा सकते हैं, जो इस प्रकार हैं–

(अ) बौद्ध काल–1000 ई.पू. से सन् 1 ई. तक।

(आ) भरत काल–1 ई.से 800 ई. तक।

बौद्धकाल–इस काल को पौराणिक युग की भी संज्ञा दी गयी है। इस समय में संगीत का प्रचार तो अवश्य था, किन्तु इस समय की संगीतसम्बन्धी कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध न होने के कारण कुछ इतिहासकारों ने इसका नाम 'संदिग्ध-काल' रखा है। बौद्ध-युग में गणिकाओं का होना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि उस समय संगीत का प्रचार था। उपनिषदों से भी यही ज्ञात होता है। संस्कृत व्याकरणाचार्य पाणिनि रचित अष्टाध्यायी में भी संगीत सम्बन्धी चर्चा आयी है।

आधुनिक काल के दो ग्रंथों महाभारत और रामायण का रचनाकाल क्रमशः 500 ई. पू. से 200 ई. एवं 400 ई. पू. से 200 ई. तक माना जाता है। महाभारत में सात स्वरों के साथ ही गांधार ग्राम का उल्लेख मिलता है। रामायण का प्रमुख पात्र रावण स्वयं एक सिद्ध संगीतज्ञ था। प्रसिद्ध है कि 'रावण-हत्था' उसका प्रिय वाद्य था। रामायण में मक्खियों के गुनगुनाने की उपमा तार-वाद्यों से एवं बादल की गरज की उपमा मृदंग से दी गयी है। रामायण के अनुसार सुग्रीव के महल में प्रवेश करते समय लक्ष्मणजी ने वीणा की सुमधुर ध्वनि का रसास्वादन किया था। भेरी, मृदंग, दुन्दुभी, वीणा, घट, डिम्डिम्, मुद्दुक, आदम्बर आदि वाद्यों का उल्लेख भी रामायण में है। स्पष्ट है कि इस काल में संगीत का सम्यक् प्रचार था।

भरत युग—'भरत नाट्य-शास्त्र' के रचयिता उद्भट संगीतशास्त्री भरत का उदय इसी काल में हुआ। 'भरत-नाट्यं' द्वारा तत्कालीन युग में गीत, नृत्य एवं नाट्य का व्यापक प्रचार हुआ। 'भरत नाट्यं' में 22 श्रुतियाँ, 7 स्वर, 21 मूर्छना और 3 ग्रामों का उल्लेख मिलता है। इस काल में राग-रागिनियों का जन्म संभवतः नहीं हुआ था। उस समय स्वर-सप्तक या जातियों के आधार पर गीतों का निर्माण किया जाता था। नारदीय-शिक्षा में रागों का आरंभिक उल्लेख मात्र मिला है।

कालिदास—सन् 400 ई. में महाकवि कालिदास ने संगीत के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन्होंने साहित्य और संगीत को एक रूप कर संगीत को लोकरंजक रूप दिया। इस समय में दरबारों में कलाकारों का काफी सम्मान था।

भरत—5 वीं शताब्दी में भरत ने 'नाट्य-शास्त्र' की रचना की। इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

दत्तिल—दत्तिल नामक एक विद्वान् ने इसी काल में नाट्य-शास्त्र के ही समान एक ग्रंथ 'दत्तिलम्' की रचना की।

मतंग—छठी शताब्दी में संगीत-जगत में मतंग नामक उद्भट संगीत-शास्त्री अवतरित हुए। मतंग ने ही सर्वप्रथम रागों का विस्तृत वर्णन किया। मतंगरचित 'बृहद्देशीय' ग्रंथ में ग्राम व मूर्छना के साथ रागों का भी विस्तृत वर्णन है। शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकार' में इनके ग्रंथ 'बृहद्देशीय' से बहुत सहायता ली है।

नारद—7वीं शताब्दी के अंत में नारद नामक संगीत-शास्त्री ने 'नारदीय शिक्षा' एवं 'संगीत-मकरंद' की रचना की। 'संगीत-मकरंद' में नारद ने प्रथम बार पुरुष-राग एवं स्त्री-राग की कल्पना की है। प्रसिद्ध है कि उक्त वर्गीकरण के आधार पर ही कलाविदों ने राग-रागिनियों का विभाजन किया।

आठवीं शताब्दी तक संगीत का व्यापक प्रचार हो गया था। इसी काल में भारत के कुछ भागों में भक्ति-आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। फलस्वरूप भजन और कीर्तनों का जम कर प्रचार हुआ। इस प्रकार इस सम्पूर्ण काल में संगीत के शास्त्रीय एवं कला पक्ष दोनों में यथेष्ट प्रगति हुई। कैप्टेन डे ने एक स्थान पर लिखा है, "भारतीय संगीत का समृद्धि-युग यवनों की विजय से कुछ समय पूर्व देशी राजाओं के काल में था।"

मध्यकाल (सन् 800 ई. से सन् 1800 ई. तक)

मध्यकाल से संगीत-कला में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। यह सत्य है कि इस काल के पूर्व जिस गम्भीरता और पाण्डित्यपूर्ण ढंग से संगीतशास्त्र का सृजन हुआ,

वह गाम्भीर्य इस काल में नहीं रहा। निस्संदेह इस काल में नये रागों का आविष्कार व विभिन्न संगीत वाद्यों का निर्माण हुआ। बादशाहों ने अपना मान एवं प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये कलाकारों का भी सम्मान किया। फलस्वरूप कलाकारों को ऐश्वर्य, मान और संगीत में नयी-नयी चीज़ें निकालकर उन्हें मांजने का अवसर मिला। इस समय भारत में यत्र-तत्र राजनीतिक युद्ध होते रहे। काफी अव्यवस्था फैली थी। अतः कलाओं की कोई विशेष उन्नति नहीं हुई।

जयदेव—12 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में संस्कृत के प्रख्यात कवि संगीतज्ञ जयदेव ने 'गीत-गोविन्द' की रचना कर साहित्य के साथ ही संगीत की रसधार को पुनः प्रवाहित किया। जयदेव-रचित 'गीत-गोविन्द' राधाकृष्ण-सम्बन्धी उत्कृष्ट प्रबन्ध-काव्य है। बंग प्रदेश में बोलपुर के निकट केण्डुला ग्राम में जन्मे जयदेव उत्तर-भारत के प्रथम गायक माने जाते हैं। जयदेव की स्मृति में प्रति वर्ष बंगाल में आज भी संगीत-समारोह का आयोजन होता है। जयदेव ने 'गीत-गोविन्द' के प्रत्येक गीत पर गायकों की सुविधार्थ राग और ताल का निर्देश किया है।

शारंगदेव—13 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कला-जगत को 'संगीत-रत्नाकर' जैसा अलभ्य ग्रंथ देकर संगीतशास्त्री शारंगदेव ने संगीत के अक्षय भंडार की पूर्ति की। संगीत-इतिहास की दृष्टि से भरत, दत्तिल, मतंग और नारद के उपरांत शांरगदेव ही एक ऐसे संगीत-शास्त्री हुए जिन्होंने संगीत-शास्त्र में महत्वपूर्ण संशोधन और परिवर्धन किया। इनसे पहले संगीतशास्त्री समवादी स्वरों में 9 अथवा 13 श्रुतियों का अंतर मानते थे किन्तु शारंगदेव और उनके पश्चात् के संगीत-शास्त्रियों ने 8 अथवा 12 श्रुतियों का अंतर माना है। विवादी स्वरों में भी आपने 2 के स्थान पर केवल 1 श्रुति का ही अंतर माना है। 'संगीत-रत्नाकर' में लगभग 264 रागों की चर्चा की गयी है किन्तु यह राग आज अंधकार के गर्भ में हैं।

विकास काल (13 वीं शताब्दी से 1800 ई. तक)—मुस्लिम शासन का आरम्भ वास्तव में 11 वीं शताब्दी से हो गया था। किन्तु 13 वीं शताब्दी तक मुस्लिम शासक केवल सत्ता हस्तगत करने के फेर में ही रहे। अब इन शासकों ने कलाओं को भी प्रोत्साहन देना आरम्भ किया। इस काल में संगीतज्ञों को सदैव राज्याश्रय प्राप्त रहा और अमीर ख़ुसरो, तानसेन, सदारंग, अदारंग-जैसे महान कलाविद् अवतरित हुए।

इसी काल से संगीत पर विदेशी प्रभाव पड़ना आरम्भ हुआ। भारतीय एवं फ़ारस के संगीत का सम्मिश्रण हुआ। इससे भारतीय संगीत के रूप में यथेष्ट परिवर्तन हुआ। नये रागों और नयी गायकी का आविष्कार हुआ।

इस काल की एक महत्वपूर्ण घटना यह हुई कि उत्तर भारतीय संगीत का दक्षिण के संगीत से सम्बन्ध टूट गया। इस कारण दक्षिण के संगीत का अपना रूप पूर्ववत् ही बना रहा।

अमीर ख़ुसरो—खिलजी वंश में साहित्यिक-संगीतज्ञ अमीर ख़ुसरो का अभूतपूर्व सम्मान हुआ। ख़ुसरो ने कई गायन-शैलियों और वाद्यों का निर्माण किया। किंवदंती है कि दक्षिण स्थित देवगिरि राज्य के गोपाल नायक से इनकी संगीत-प्रतियोगिता हुई थी, जिसमें इनकी विजय हुई थी।

लोचन कवि—15वीं शती के आरम्भ में पं. लोचन कवि ने 'राग-तरंगिणी' की रचना की। इस ग्रंथ में लोचन कवि ने संगीत में सर्वप्रथम थाट (मेल) पद्धति का उल्लेख किया है। इन्होंने पुरानी राग-रागिनियों को मान्यता न देकर, कुल 12 थाटों के आधार पर अनेक रागों का वर्गीकरण किया। 'राग-तरंगिणी' में जयदेव और विद्यापति के साहित्य की टीका की गयी है। इनका शुद्ध थाट आज के शुद्ध काफ़ी थाट के समान था।

कल्लिनाथ—सन् 1425 ई. में विजयनगर के राजा देवराज के एक दरबारी संगीतज्ञ एवं कवि पंडित कल्लिनाथ ने संस्कृत भाषा में 'संगीत-रत्नाकर' की विवेचना की।

सुल्तान हुसेन शर्की—सन् 1458-99 ई. में जौनपुर के बादशाह सुल्तान हुसेन शर्की ने ख़्याल-गायकी का आविष्कार किया। इन्होंने जौनपुरी, तोड़ी, सिन्धु भैरवी, रसूल, श्याम आदि रागों का निर्माण किया।

भक्ति आन्दोलन—इसी समय सन् 1485 ई. से 1533 तक उत्तरी भारत में भक्ति आन्दोलन का ज़ोर रहा। स्थान-स्थान पर भजन-कीर्तन का चलन बढ़ा। बंगाल में चैतन्य महाप्रभु ने भी संकीर्तन का प्रचार किया जिससे परोक्षरूप से संगीत का अत्यधिक प्रचार हुआ।

रामामात्य—सन् 1550 में दक्षिण भारतीय संगीत-शास्त्री श्री रामामात्य ने कर्नाटकी संगीत पर प्रथम ग्रंथ 'स्वरमेलकलानिधि' की रचना की।

16 वीं शताब्दी में सन् 1556 से 1605 ई. तक मुगल सम्राट अकबर के शासनकाल में भारत में चतुर्मुखी विकास हुआ। इसी काल में स्वामी हरिदास, तानसेन, बैजू बावरा, रामदास, नौबत खाँ, तानरंग खाँ, मसीत खाँ आदि प्रमुख संगीतज्ञ हुए। 'आईने अकबरी' के अनुसार अकबर के दरबार में 36 संगीतज्ञ थे।

स्वामी हरिदास—इनका जन्म सम्वत् 1568, भाद्रपद शुक्ल 8, सन् 1512 ई. में हुआ। वृन्दावन के संतगायक स्वामी हरिदास तानसेन के गुरु थे। अपने

अन्यान्य शिष्यों के माध्यम से आपने उस काल में संगीत का व्यापक प्रचार किया। सम्राट अकबर ने इनका गान छद्मवेश में सुना था। यह स्वाभिमानी कलाकार कभी भी राज्याश्रय के भूखे नहीं रहे।

तानसेन—कलावंत तानसेन अकबर के नवरत्नों में से एक थे। तानसेन के समान ख्याति संगीत-संसार में सम्भवतः किसी अन्य गायक को नहीं मिली। (इनका विस्तृत जीवन-परिचय आगे देखिये)

बैजू बावरा—बैजू बावरा भी इसी युग के एक प्रमुख संगीतज्ञ थे। वे कुछ समय के लिये राजा मानसिंह तोमर के दरबार में रहे। राजा मानसिंह की फ़र्माइश की पहली धमार "राजा मान होरी खेले" की रचना इन्होंने की थी। तानसेन और बैजू बावरा की संगीत-प्रतियोगिता उल्लेखनीय है।

राजा मानसिंह तोमर—उसी काल में ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने संगीत के नये घराने का समारम्भ किया। यह और इनकी पत्नी मृगनयनी दोनों ही उच्चकोटि के कलाकार थे। ज्ञातव्य है कि ग्वालियर में इन्होंने एक संगीत-विद्यालय की स्थापना की थी जिसमें तानसेन ने भी कुछ समय तक शिक्षा प्राप्त की थी। राजा मानसिंह को ध्रुवपद और धमार का आविष्कारक माना जाता है। उस समय के प्रख्यात नायक बख्शूजी इन्हीं के दरबार में थे।

संत कवि—इसी समय में हिन्दी साहित्य के कुछ अमर कवि संगीतज्ञ भी हुए। सूरदास, तुलसीदास, मीरा एवं कबीरदास इसी युग की विभूतियाँ हैं।इन कवियों ने अपनी भावपूर्ण कवितायें गा-गाकर जन-मन में संगीत का व्यापक प्रसार किया।

पं. पुण्डरीक बिट्ठल—इसी काल में दक्षिण में बुरहानपुर के राजा बुरहानख़ाँ फ़ारूख़ी के दरबार में संगीतशास्त्री पं. पुण्डरीक बिट्ठल के होने का उल्लेख है। इनको कर्नाटकी संगीत के साथ उत्तर भारतीय संगीत का भी पर्याप्त ज्ञान था। कहा जाता है कि इनसे प्रभावित हो कुछ समय के लिये सम्राट अकबर इनको अपने साथ दिल्ली ले गये थे। सन् 1599 के लगभग इनके द्वारा रचित 'रुद्रांग-चन्द्रोदय', 'रागमाला', 'रागमंजरी' तथा 'नर्तन-निर्णय' नामक चार ग्रंथ मिले हैं। 'रागमाला' में उत्तर भारत के कुछ रागों का उल्लेख भी है।

अकबर के पश्चात् सन् 1605 ई. से 1627 तक जहांगीर के शासनकाल में उत्तर की अपेक्षा दक्षिण भारत में संगीत सम्बन्धी कार्य अधिक हुआ। छतरख़ाँ, बिलासख़ाँ, खुर्रमदादख़ाँ, मक्खू और हमज़न आदि जहाँगीर के प्रसिद्ध दरबारी गायक थे।

पंडित सोमनाथ—सन् 1610 ई. में राजमुन्द्री नामक स्थान के निवासी कर्नाटकी

संगीतशास्त्री पं. सोमनाथ (तेलगू ब्राह्मण) ने 'राग-विबोध' नामक ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ के अवलोकन से पता चलता है कि उस समय दक्षिण एवं उत्तर भारतीय संगीत के समन्वय को काफी प्रोत्साहन एवं महत्व दिया जा रहा था। 'राग-विबोध' में कई प्रकार की वीणाओं का उल्लेख है। ग्रंथ में इन्होंने रागों के जन्य-जनक नामों का वर्गीकरण भी किया है।

पं. दामोदर—सन् 1625 ई. में दामोदर पंडित ने उत्तर-भारतीय पद्धति पर अनुपम ग्रंथ 'संगीत दर्पण' की रचना की। उस ग्रंथ में कहीं-कहीं 'संगीत रत्नाकर' से काफी साम्य है। 'संगीत-रत्नाकर' की भांति यह भी एक क्लिष्ट ग्रंथ है। इसमें राग-रागिनियों के सुन्दर चित्र चित्रित किये गये हैं। इस पुस्तक का हिन्दी और फ़ारसी में अनुवाद हो चुका है।

1627 ई. से 1658 ई. तक भारत में शाहजहाँ का शासन रहा। शाहजहाँ स्वयं एक सुन्दर गायक थे। कविराज जगन्नाथ, श्री रामदास महापहेर, दिरंगख़ाँ और लालख़ाँ आदि शाहजहाँ के प्रख्यात दरबारी गायक थे। दरबारी गायक लालख़ाँ और दिरंगख़ाँ को शाहजहाँ ने चाँदी से तुलवाकर प्रत्येक को 4500 रूपये पुरस्कार स्वरूप दिये थे।

इसी काल में पं. अहोबल और पं. हृदयनारायणदेव जैसे उद्‌भट संगीतशास्त्री भी हुए।

पंडित अहोबल—सन् 1650 ई. के निकट पं. अहोबल ने 'संगीत-पारिजात' नामक एक श्रेष्ठ संगीत-ग्रंथ की रचना की। आपने ही सर्वप्रथम वीणा के तार की लम्बाई स्थिर कर, उस पर शुद्ध एवं विकृत कुल 12 स्वरों की स्थापना की। इनका शुद्ध थाट आधुनिक काफ़ी थाट के समान ही था। हिंदी और फ़ारसी में 'संगीत-पारिजात' का अनुवाद हो चुका है।

अहोबल के पिता का नाम श्रीकृष्ण था। आपने वैसे 19 स्वरों के नाम दिये हैं किन्तु व्यवहार में केवल 12 स्वरों का ही प्रयोग किया है।

हृदयनारायणदेव—इन्होंने भी पंडित अहोबल द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का अनुमोदन करते हुए 'हृदय-कौतुक' और 'हृदय-प्रकाश' नामक दो ग्रंथों की रचना की।

व्यंकटमखी—सन् 1660 ई. में दक्षिण भारतीय संगीत के आचार्य पं. व्यंकटमखी ने कर्नाटकी संगीत के आधार पर 'चतुरदण्डिकाप्रकाश' नामक महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की। इसमें उन्होंने गणित द्वारा कुल 72 थाट माने हैं और इनसे कुल 484 रागों की उत्पत्ति बताई है। यह अपने को शारंगदेव की परंपरा का मानते थे। इन्होंने भी कुल 12 स्वरों का ही प्रयोग किया है।

सन् 1658 से 1707 तक शहंशाह औरंगज़ेब के काल में संगीत को कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। वह संगीत को घृणास्पद और इस्लाम धर्म के विपरीत मानता था।

भावभट्ट—एकान्त साधक श्री भावभट्ट ने इस काल में 'अनूपविलास', 'अनुपांशुक' एवं 'अनूपसंगीतरत्नाकर' नामक तीन ग्रंथों की रचना की। इनका शुद्ध थाट मुखारी था तथा 20 थाटों के आधार पर इन्होंने रागों का विभाजन किया। यह बीकानेर के राजा अनूपसिंह के दरबारी संगीतज्ञ थे।

अन्तिम मुगल बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले (सन् 1719 ई. से 1740 ई. तक) स्वयं एक कुशल शायर और सुन्दर गायक थे। इनके समय में कला की चतुर्मुखी उन्नति हुई। इसी समय ख़्याल, टप्पा, तिरवट, ग़ज़ल आदि गायन-शैलियों का चलन आरम्भ हुआ।

सदारंग-अदारंग—प्रख्यात गायक सदारंग और अदारंग इनके दरबार के दो अनुपम रत्न थे। ख़्याल-गायिकी का प्रचार इन्होंने ही किया। इन्होंने हज़ारों ख़्यालों की रचना की, जिन्हें इनसे असंख्य शिष्यों ने सीखा। आज भी इनके ख़्याल काफ़ी प्रचलित हैं।

शोरी मियाँ—लखनऊ के शोरी मियाँ ने गायन में टप्पा-शैली का आविष्कार किया। यह अपने अन्तिम समय में पंजाब चले गये थे।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मुग़ल साम्राज्य की शक्ति क्षीण हो गयी थी। कला पर राजनीति हावी हो गयी थी। अतः कलाकारों के सम्मान में कमी आ गयी। फिर भी भिन्न-भिन्न रियासतों में कलाकारों का सम्मान पूर्ववत् बना रहा।

श्रीनिवास—इसी समय श्री श्रीनिवास ने 'राग-तत्व-विबोध' की रचना की। इन्होंने भी अपना शुद्ध थाट काफ़ी के समान रखा तथा अहोबल की भाँति कुल 12 स्वर-स्थान स्थिर किये।

राजा तुलाजी राव—(1763-86 ई.) इस काल में कर्नाटकी पद्धति पर तंजौर के राजा तुलाजी राव ने 'संगीत रागामृत' की रचना की।

इसी काल का 'राग-लक्षणम्' नामक एक और ग्रंथ प्राप्त हुआ है। इसकी रचना तंजौर के किसी ब्राह्मण संगीतज्ञ ने की थी। पुस्तक पर किसी लेखक का नाम नहीं लिखा है।

आधुनिक काल (सन् 1800 ई. से 1947 ई. तक)

इस काल में भारत में अंग्रेजों का आगमन एवं उनका शासन आरम्भ हो गया था। ये भारतीय कलाओं को कोई प्रोत्साहन नहीं देते थे। देशी राजा-महाराजाओं

ने भी कलाकारों को कोई विशेष प्रश्रय नहीं दिया। केवल कुछ ही रियासतों और रईसों ने संगीतज्ञों को प्रश्रय दिया। तत्कालीन कुछ विभूतियाँ एकान्त साधना में लीन रहीं। इस युग में शिक्षा के पाठ्यक्रम तथा वातावरण, सभी पर विदेशियों की गहरी छाप पड़ी। भारतीय कलाओं की उन्नति की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। फलस्वरूप संगीत-कला अशिक्षितों और निम्न श्रेणी के कलाकारों के हाथों में चली गयी। इससे उच्च श्रेणी के सभ्य समाज में इसे हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। फिर भी इस युग में कुछ अन्वेषणाकांक्षी स्वभाव के कलाप्रेमी अवतरित हुए, जिन्होंने भारतीय संगीत की अविरल रसधार को प्रवाहमय बनाया। कुछ विदेशी लेखकों, विलियम जोन, कैप्टेन विलर्ड तथा कैप्टेन डे आदि ने संगीत-सम्बन्धी कुछ सुन्दर पुस्तकों की रचना की। इससे शिक्षित समाज का ध्यान आंशिक रूप से इस ओर आकृष्ट हुआ और संगीत के प्रति समाज में जो अनादर व्याप्त था उसमें कुछ कमी अवश्य आयी। किन्तु स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

मुहम्मद रज़ा—इस काल में बिलावल थाट को शुद्ध मान कर सर्वप्रथम सन् 1813 में पटना के एक रईस कलाप्रेमी मुहम्मद रज़ा ने 'नगमाते आसफ़ी' नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में श्री रज़ा ने पूर्व प्रचलित राग-रागिनी पद्धति का खण्डन कर, उसे तत्कालीन संगीत के प्रतिकूल ठहराया और 6 राग एवं 36 रागिनी मान कर उनका नये ढंग से विभाजन किया।

सवाई प्रतापसिंह देव—(सन् 1779 से 1804 ई. तक) इन्होंने भारत के लगभग सभी मान्य संगीत-शास्त्रियों और संगीतज्ञों की विचार गोष्ठी करायी और उस गोष्ठी के निश्चयों के अनुसार 'संगीत-सार' नामक पुस्तक लिखी। इसमें बिलावल थाट को शुद्ध थाट स्वीकार किया गया है।

कृष्णानंद व्यास—1842 ई. में श्री कृष्णानंद व्यास ने अपनी पुस्तक 'संगीत कल्पद्रुम' में सैकड़ों ध्रुवपद, ख़्याल तथा अन्य गीतों का संकलन किया। व्यास जी ने इन गीतों की स्वर-लिपि नहीं दी है।

दक्षिणी संगीत—इस काल में दक्षिण में तंजौर नामक स्थान कर्नाटकी संगीत का मुख्य केन्द्र बन गया था। यहाँ त्यागराज, श्याम शास्त्री, सुबराम दीक्षित आदि संगीत-प्रचारक हुए। त्यागराज का समय 1800 ई. से 1850 ई. तक बताया जाता है।

सुरेन्द्र मोहन टैगोर—19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बंगाल के राजा सर सुरेन्द्र मोहन टैगोर ने राग-रागिनी पद्धति का समर्थन करते हुए एक सुन्दर पुस्तक 'युनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ म्यूज़िक' की रचना की। बंगाल के अन्य संगीत-शास्त्रियों ने भी इस

पुस्तक के प्रतिपादित सिद्धान्तों का समर्थन किया है।

संगीत का प्रचार काल—आधुनिक काल के अंतर्गत ही सन् 1900 से 1947 तक के युग को संगीत-शास्त्रियों ने प्रचार-काल की संज्ञा दी है।

इस समय तक भी संगीत-कला के रूप में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हुआ था। संगीत के प्रति शासन की उपेक्षा बराबर बनी रही। किन्तु ग्वालियर, जयपुर, बड़ौदा, रामपुर आदि रियासतों और लखनऊ में कुछ साधक अभी भी संगीत की उन्नति में अपने ढंग से लगे हुए थे। उस्ताद अपने शिष्यों को शिक्षा दान करते थे। किन्तु अभी तक संगीत-शिक्षा का कोई वैज्ञानिक ढंग नहीं स्थापित था, अतएव यह कार्य अपने-अपने ढंग से विभिन्न प्रकार से चल रहा था। 'प्रचार-काल' में संगीत-शास्त्रियों ने इस समस्या पर ध्यान दिया और एक व्यवस्थित सुधारात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया।

इस काल में श्री विष्णु नारायण भातखण्डे ने संगीत के उद्धार के लिये महत्वपूर्ण कार्य किये। श्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने क्रियात्मक-पक्ष (Practical Side) और भातखण्डे जी ने शास्त्र-पक्ष (Theory Side) पर सराहनीय कार्य किये। इन्होंने शिक्षा-संस्थाओं में संगीत का सुव्यवस्थित पाठ्यक्रम निर्धारित किया और छात्रों को समुचित रूप से संगीत-शिक्षा प्राप्त होने लगी। पूना, बम्बई, बंगलौर, ग्वालियर, बड़ौदा, तंजौर, मैसूर, त्रिवेन्द्रम, कलकत्ता, लखनऊ, दिल्ली आदि स्थानों पर संगीत-विद्यालयों की स्थापना हुई। रेडियो और चित्रपटों द्वारा जन-जन में संगीत का व्यापक प्रचार हुआ। परिणामस्वरूप सभ्य-समाज भी संगीत-कला की ओर आकृष्ट हुआ और संगीत जन-अभिरुचि का विषय बन गया।

इस काल के कतिपय संगीत-शास्त्रियों का संक्षिप्त परिचय यहां दिया जा रहा है—

श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर—कवीन्द्र-रवीन्द्र ने अनगिनत बंगला गीतों को विभिन्न राग-रागिनियों में नवीन स्वर-समुदायों की सहायता से संगीतबद्ध किया। उन्होंने भाव-संगीत का विकास किया तथा शब्दों और स्वरों में सामंजस्य स्थापित कर संगीत के साहित्यिक पक्ष को समृद्ध किया।

श्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर और श्री विष्णु नारायण भातखण्डे इस युग के दो मुख्य स्तम्भ थे। इनके जीवन-परिचय और इनके संगीत सम्बन्धी कार्यों की चर्चा आगामी पृष्ठों में विस्तारपूर्वक की गई है।

राजा नवाबअली—अवध के संगीत-प्रेमी राजा नवाबअली ने संगीत की प्रगति में उल्लेखनीय कार्य किया। इनके द्वारा लिखित 'मुआर्फ़ुतुल नग़माय' तीन खण्डों

में संगीत-विषयक रोचक ग्रंथ है। यह मूलतः लाहौर के रहने वाले थे।

इस युग में संगीत-विषयक अन्य ग्रंथ भी प्रकाशित हुए जिनसे संगीत सम्बन्धी ज्ञान में वृद्धि की जा सकती है।

अति आधुनिक काल (वर्तमान काल)
(सन् 1947 से वर्तमान समय तक)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत की सांस्कृतिक चेतना जागी। संगीत के क्षेत्र में इस युग में क्रांतिकारी प्रगति हुई। संगीत के विभिन्न स्वरूपों का विकास इस युग की महत्वपूर्ण देन है।

सुगम-संगीत और लोक-संगीत को इस युग में विशेष प्रोत्साहन मिला। आकाशवाणी के प्रायः प्रत्येक केन्द्र में सुगम-संगीत यूनिटें स्थापित की गई हैं, जो इसमें नये-नये प्रयोग कर रही हैं। इसी प्रकार लोक-संगीत पर भी आकाशवाणी के सभी केन्द्र सराहनीय कार्य कर रहे हैं। प्रत्येक वर्ष केन्द्रीय और राज्य-सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में लोक-गीतोत्सव का कार्यक्रम आयोजित कर लोकगीतकारों को प्रोत्साहन देती हैं। लोकसंगीत सम्बन्धी साहित्य भी इधर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से काफ़ी प्रकाश में आया है।

इस युग में भारतीय वाद्यों पर भी काफ़ी काम हुआ है। आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र में वाद्यों के विकास हेतु एक प्रथम यूनिट स्थापित की गयी है, इस यूनिट ने इस क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है।

संगीतज्ञों को प्रोत्साहित करने के लिये दिल्ली और मद्रास में दो संगीत अकादमी स्थापित हुई हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी इस प्रकार की एक अकादमी स्थापित करने की घोषणा की है। यह अकादमी प्रतिवर्ष सिद्ध संगीतज्ञों को पुरस्कार प्रदान करती हैं तथा नवोदित कलाकारों को संगीत-ज्ञान-वर्धन हेतु छात्र-वृत्तियाँ प्रदान करती हैं। सरकारी और गैरसरकारी तौर पर संगीत प्रतियोगिताओं और संगीत सम्मेलनों का आयोजन भी प्रतिवर्ष अनेक स्थानों पर होता रहता है।

हाथरस से 'संगीत', प्रयाग संगीत विद्यापीठ की पत्रिका तथा अन्य कई पत्र-पत्रिकाएँ संगीत-कला के विकास में अपना योगदान कर रही हैं। संगीत कार्यालय, हाथरस ने कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण प्राचीन ग्रंथों का अनुवाद कर इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है।

ठाकुर जयदेव सिंह, श्री कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति, आचार्य देवधर, श्री कृष्णनारायण रातंजनकर, श्री वीरेन्द्रकिशोर राय चौधरी आदि इस युग के प्रमुख

संगीत-शास्त्री संगीत को पूर्ण विकसित रूप देने में प्रयत्नशील हैं।

इस प्रकार स्वतन्त्र भारत में अल्प समय में ही संगीत के विकास की ओर निस्संदेह सराहनीय कार्य हुआ है। फिर भी संगीत की कुछ अपनी समस्यायें हैं। इन समस्याओं का उल्लेख पूर्व के दो अध्यायों में विस्तारपूर्वक किया गया है। उन समस्याओं पर संगीत के शास्त्रियों और कलाकारों को अपना ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है। सम्भव है उनके निराकरण के पश्चात् संगीत-कला का विशुद्ध एवं पूर्ण विकसित स्वरूप सामने आ सके।

संगीत की उत्पत्ति से सम्बन्धित जनश्रुतियाँ

हम पहले कह चुके हैं कि संगीत की उत्पत्ति के सम्बंध में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। यहाँ हम संक्षेप में उन्हीं जनश्रुतियों का उल्लेख करेंगे–

(1) संगीत की उत्पत्ति वेदों के रचयिता ब्रह्मा के द्वारा हुई। ब्रह्मा ने यह कला भगवान शंकर को दी। तत्पश्चात् शिव ने इस कला को संगीत के प्रचार हेतु नारद को सिखाया, जिन्होंने गायन, नृत्य और वादन की शिक्षा क्रमशः गन्धर्व, अप्सरा और किन्नर को दी। इन तीनों ने भूलोक में इन कलाओं का प्रचार किया।

(2) 'संगीत-दर्पण' के रचयिता दामोदर पंडित ने संगीत की उत्पत्ति ब्रह्मा से बतायी है। उनके अनुसार ब्रह्मा ने जिस संगीत का आविष्कार किया, उसी का प्रयोग भरत ने भगवान शंकर के सम्मुख किया। इस संगीत को मार्गी संगीत कहा गया है।

(3) **सात स्वरों की उत्पत्ति**–7 स्वरों की उत्पत्ति सात पक्षियों के स्वरों से बतायी गयी है। मोर से षड़ज, चातक से ऋषभ, अज (बकरा) से गांधार, कौवे से मध्यम, कोयल से पंचम, मेंढक से धैवत और हाथी से निषाद।

(4) एक फ़ारसी विद्वान के अनुसार, हज़रत मूसा एक बार पहाड़ों में विचरण कर रहे थे तभी आकाशवाणी हुई कि "ऐ मूसा! फ़कीरों के पास जो असा अस्त्र होता है उसे तू इस पत्थर पर मार।" मूसा ने आकाशवाणी का पालन किया और उस को उस पत्थर पर दे मारा। पत्थर के सात टुकड़े हो गये और इन सात टुकड़ों से अलग-अलग जलधार प्रवाहित हुईं। उन धाराओं की विभिन्न आवाज़ों से ही हज़रत मूसा ने सात

स्वरों की रचना की और इनका नाम सा, रे, ग, म, प, ध, नी रखा।

(5) पार्वती के सोते समय शंकर भगवान ने उनके अंग-प्रत्यंगों को देखकर रुद्र वीणा का निर्माण किया। शंकर समय-समय पर देवी देवताओं के सम्मुख अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। यही संगीत-साधना कालांतर में भूलोक पर अवतरित हुई।

(6) शिव ने पाँच रागों की सृष्टि की। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण से आकाशोन्मुख मुखों से भैरव, हिंडोल, मेघ, दीपक और श्री रागों की उत्पत्ति हुई तथा पार्वती के मुख से छठे राग कौशिक की उत्पत्ति हुई।

प्राचीन काल में संगीत में अनेक मत प्रचलित थे। किन्तु इन मतों के सम्बन्ध में पर्याप्त भ्रम फैला है और उनके आधार पर कोई निश्चित बात नहीं कही जा सकती। उक्त मतों के नाम इस प्रकार है—शिव मत, कल्लिनाथ मत, भरत मत, हनुमन्त मत, ब्रह्मा मत, नारद मत आदि।

शारंगदेव

भारतीय संगीताकाश के दीप्यमान नक्षत्र श्री शारंगदेव ने संगीत के परिमार्जन, परिवर्धन एवं प्रचार-प्रसार में स्तुत्य कार्य किया। भारतीय संगीत की आधार-शिला, 'संगीत-रत्नाकर' की रचना भी शांरगदेव ने ही की। आज यद्यपि उत्तर भारतीय एवं दक्षिण भारतीय संगीत में काफी विविधता आ गयी है, फिर भी यह निर्विवाद है कि उक्त दोनों शैलियों के शास्त्र-वेत्ताओं ने अपनी नींव 'संगीत-रत्नाकर' में प्रतिपादित सिद्धांतों पर ही आधारित की। इसी कारण शारंगदेव आज भी भारतीय संगीत के आधार-स्तम्भ माने जाते हैं।

इतिहासवेत्ताओं के अनुसार आप सन् 1210 ई. से सन् 1242 ई. तक देवगिरि के यादववंशीय राजा के आश्रित थे। आपके पूर्वज काशमीरी ब्राह्मण थे जो किसी समय दक्षिण में जाकर वहीं बस गये थे। शारंगदेव के पिता श्री सोढ़ला, यादववंशीय राजा भिल्लमा और सिंहना के दरबार में उच्चपदस्थ कर्मचारी थे। संभवतः इसी कारण इन्हें कृपालु राजा का सरल स्नेह एवं दुलार मिला तथा इनकी शिक्षा-दीक्षा राज्याश्रय में ही हुई। बाल्यकाल से ही ललित कलाओं की ओर आपकी सहज प्रवृत्ति थी।

ललितकलाओं के सम्बन्ध में, आदि ग्रंथ 'नाट्य-शास्त्र' के रचयिता भरत मुनि तथा उद्भट संगीत-शास्त्री मतंग के बाद शांरगदेव का प्रादुर्भाव उल्लेखनीय है। इनके समय में संगीत में उक्त दोनों कलाविदों द्वारा निर्धारित मान्यतायें ही प्रचलित थीं। शारंगदेव ने उनका अध्ययन तो किया, साथ ही उत्तर भारतीय संगीत का भी मनन किया। वास्तव में भारतीय संगीत की अमूल्य निधि 'संगीत-रत्नाकर' से ही हमें शारंगदेव के गहन-अध्ययन एवं पाण्डित्य का आभास मिलता है।

'संगीत-रत्नाकर' में नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्छना, जाति आदि की विशद विवेचना की गयी है। गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों कलाओं का वर्णन किया गया है। 'संगीत-रत्नाकर' में राग-रूप व्यवस्था का वर्णन नाट्य-शास्त्र की अपेक्षा अधिक

विस्तार से किया गया है। कुछ संगीत-शास्त्रियों का यह निश्चित मत है कि भरत मुनि के काल में कोई राग-व्यवस्था नहीं थी। 'संगीत-रत्नाकर' में मतंग द्वारा प्रतिपादित मत का भी उल्लेख किया गया है। आज मतंग-रचित कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। शारंगदेव ने भरत और मतंग से अधिक वर्णन किया है। वैसे शारंगदेव ने भरत मुनि तथा मतंग दोनों के सिद्धांतों का उल्लेख किया है। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि 'संगीत-रत्नाकर' में विषय का क्रम रखने में उन्होंने मतंग का ही विशेष अनुकरण किया है।

शारंगदेव ने 12 विकृत स्वर तथा 7 शुद्ध एवं 11 विकृत जातियाँ मानी हैं। उन्होंने ग्राम-रागों से जातियों की उत्पत्ति तथा उनका विकास-क्रम माना है।

शारंगदेव द्वारा स्थापित श्रुति-अन्तर तथा वर्तमान समय में प्रचलित श्रुति-अन्तर में भिन्नता है। इसी कारण शारंगदेव द्वारा स्थापित स्वर और रागों तथा आधुनिक स्वर और रागों में भी अन्तर है। इस सम्बन्ध में स्मरणीय है कि शारंगदेव के काल में भरत द्वारा वर्णित जातियाँ प्रायः लुप्त हो चली थीं और मतंग-रचित रागों ने अपना प्रभाव जमा लिया था। किन्तु कालांतर में शारंगदेव रचित रागों का इतना अधिक प्रसार हुआ कि मतंग द्वारा रचित रागों की गति मन्द हो गयी। आज स्थिति और बदल गई है। शारंगदेव द्वारा पाण्डित्यपूर्ण ढंग से रचित राग आज प्रचलित नहीं हैं। इनका शुद्ध थाट मुखारी आज कर्नाटकी संगीत में 'कनकांगी' कहा जाता है।

शारंगदेव संगीत-कला के ऋषि माने जाते हैं। संगीत के इतिहास में यह अमर रहेंगे। 'संगीत-रत्नाकर' के बिना संगीत-साहित्य निश्चय ही निस्तेज और निष्प्राण हो जायेगा क्योंकि यह ग्रंथ संगीत-कला के दो युगों को जोड़ने में शृंखलास्वरूप है। इसी 'संगीत-रत्नाकर' के रचयिता संगीतमनीषी शारंगदेव के प्रति बरबस ही हमारा सिर श्रद्धा से नत हो जाता है।

अमीर खुसरो

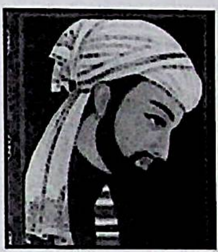

साहित्यसृष्टा, श्रेष्ठ संगीतज्ञ, कुशल नीतिज्ञ और योद्धा अमीर खुसरो चतुर्मुखी प्रतिभावाले व्यक्ति थे। आपने संगीत की अनेक नवीन शैलियों एवं वाद्यों की खोज कर उसके अक्षय भंडार की वृद्धि की।

13वीं शताब्दी के आरम्भ में चंगेज़ख़ाँ के अत्याचारों ने तुर्किस्तान के एक संभ्रात व्यक्ति स्कैफुद्दीन बलवन के परिवार को भारत आने को विवश कर दिया। यहीं पर एटा जिले में पटियाली नामक स्थान पर हिजरी सन् 650 में स्कैफुद्दीन के यहां अबुलहसन नामक बालक का जन्म हुआ। अबुलहसन बाल्यकाल ही से होनहार एवं चैतन्य थे। मेधावी अबुलहसन ही आगे चलकर कला-जगत् में अमीर खुसरो के नाम से प्रसिद्ध हुए।

अध्ययन समाप्ति के पश्चात् युवक खुसरो को अपनी प्रतिभा के कारण सहज ही में सुल्तान बलवन के शहज़ादों की देख-रेख का कार्य मिला। यहां वे क्रम से शहज़ादा बुखार खाँ और मुहम्मदशाह के पास रहे। जिस समय आप मुहम्मदशाह के पास थे, उसी समय तातारियों ने मुहम्मदशाह पर आक्रमण कर उन्हें समाप्त कर दिया तथा खुसरो को गिरफ्तार कर कारागार में डाल दिया। दो वर्ष बाद, कैद से मुक्त हो, वे दिल्ली गये और वहां दरबारियों के सम्मुख एक भावपूर्ण कविता सुनाकर मुहम्मदशाह के प्रति उन्होंने अपने उद्गार प्रकट किये।

बलवन के शासन की समाप्ति के बाद दिल्ली के तख्त पर सुल्तान जलालुद्दीन का अधिकार हुआ। कलाप्रिय जलालुद्दीन ख़िलजी ने खुसरो के गुणों का उचित सम्मान कर उन्हें मंत्रिपद पर विभूषित किया तथा 'अमीर' की उपाधि देकर विशिष्ट सम्मान दिया। उसी समय से खुसरो, 'अमीर खुसरो' कहे जाने लगे। ख़िलजी वंश के द्वितीय शासक अलाउद्दीन ख़िलजी ने भी अमीर खुसरो को राजकवि बनाकर

सम्मानित किया। उन्होंने खुसरो में एक कुशल सेनानी के भी अंकुर पाये। युद्धस्थल पर खुसरो सदा अलाउद्दीन के साथ रहते थे। सन् 1294 ई. में जब अलाउद्दीन ने देवगिरि के राजा पर आक्रमण कर उसे परास्त किया, उस समय भी खुसरो उनके साथ ही थे। यहीं पर खुसरो ने गोपाल नायक के साथ हुई संगीत-प्रतियोगिता में अपने छल एवं चातुर्य से उन्हें परास्त किया था। तत्पश्चात् गोपाल नायक की कला प्रतिभा से प्रभावित हो, वे उन्हें दिल्ली लिवा ले गये।

ख़िलजी वंश के पतन के बाद तुग़लक वंश का राज्य हुआ। तुग़लक वंश के प्रथम बादशाह ग़यासुद्दीन भी चतुर्मुखी कलाकार खुसरो को सदा अपने साथ ही रखते थे।

ग़यासुद्दीन की बंगाल-यात्रा के समय राह में खुसरो को अपने कला-गुरु शेख निज़ामुद्दीन चिश्ती के आकस्मिक निधन का समाचार मिला। शोकातुर खुसरो तुरन्त दिल्ली लौट आये और शेख चिश्ती की मज़ार के पास ही रहने लगे। उस समय से उन्हें वैराग्य-सा रहने लगा।

शेख निज़ामुद्दीन चिश्ती की मृत्यु के 6 माह बाद ही 72 वर्ष की आयु में, सन् 1325 ई. में, खुसरो का देहान्त हो गया।

कलाकार खुसरो का जीवन स्वयं में एक लम्बा इतिहास था। उन्होंने ग़ुलाम वंश का पतन, ख़िलजी वंश का उदय व अंत और तुग़लक वंश का अभ्युत्थान देखा। उक्त काल में सदा ही वे देश के अग्रगण्य सांस्कृतिक नेताओं में एक रहे।

खुसरो का कला-पक्ष

फ़ारसी संस्कृति के साथ ही भारतीय संस्कृति ने भी खुसरो को अपनी ओर आकर्षित किया। फ़ारसी भाषा के विद्वान खुसरो ने सर्वप्रथम उक्त दोनों संस्कृतियों में सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की। इसी कारण उनके जीवन-काल में ही उन पर हिन्दू-संस्कृति का पोषक तथा यवन-संस्कृति के विरोधी होने का आरोप लगाया गया। इस आरोप के उत्तर में खुसरो ने स्वयं एक स्थान पर लिखा है, "यदि मैं तुर्क हूँ तो एक भारतीय भी हूँ। मैं अपने विचारों को मिस्र से नहीं लेता और इसी कारण मैं अरब के विषय में भी कुछ नहीं बोलता हूँ। मेरी कविता भारतीयपन दरसाती है।"

खुसरो ने भारतीय संगीत को लोकरंजक रूप देने का अथक प्रयास कर, उसमें कुछ मौलिक परिवर्तन किये। आपने दक्षिण की शुद्ध स्वर सप्तक योजना को प्रचारित कर लोकानुरंजन हेतु नवीन रागों की रचना की। संगीत के साहित्य में खुसरो ने

तत्कालीन जन-भाषा का प्रयोग किया। फलस्वरूप इन्हें शीघ्र ही लोकप्रियता प्राप्त हुई। गायन में प्रचलित शैली क़व्वाली का आविष्कार अमीर खुसरो ने ही किया।

कला-निधि खुसरो ने वाद्य-यन्त्रों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। आपने सरस्वती वीणा में चार के स्थान पर तीन तार लगाये। आपने इस वाद्य का नाम फ़ारसी में 'सेहतार' रखा। फ़ारसी भाषा में 'सेह' का अर्थ होता है 'तीन'। आधुनिक काल में सर्वाधिक प्रचलित वाद्य सितार को सेहतार (तीन तारों वाले वाद्य) का विकसित रूप माना जाता है। खुसरो के काल में ही वीणा की अपेक्षा सेहतार अधिक लोकप्रिय हो गया था। उन्होंने सेहतार पर द्रुतगति की अवतारणा हेतु तालबद्ध नवीन गतों की रचना की।

आलमगीर के साहित्यिक दरबारी फक़ीरुल्ला लिखित 'रागदर्पण' के आधार पर कहा जाता है कि अमीर खुसरो ने भारतीय और फ़ारसी संगीत में सामंजस्य स्थापित कर कुछ नवीन रागों की रचना की। खुसरो-रचित रागों में उश्शाक, साज़गिरी, माफ़िक, ज़िला और सरपर्दा प्रमुख हैं। खुसरो लिखित कोई भी संगीत विषयक ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं है। कहा जाता है कि खुसरो ने लगभग 72 ग्रंथों की रचना की, जिनमें कुछ संगीत-संबंधी भी थे।

साहित्य-मर्मज्ञ अमीर खुसरो की साहित्यिक कृतियों का उल्लेख न करने से लेख एकांगी रह जायेगा। हिन्दी भाषा के उपासक खुसरो साहित्य-जगत् को बाल-सुलभ पहेलियाँ, मुकरियाँ, सलोखरे और भजन देकर हिन्दी संसार में अमर हो गये। खुसरो ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में भी कई ग्रंथ लिखे, जो इतिहास के छात्रों के लिए अमूल्य निधि हैं।

आज, पाँच शताब्दी बाद भी हम इस सांस्कृतिक नेता को भूले नहीं है। हम प्रत्येक वर्ष मई के महीने में दिल्ली-स्थित उनकी मज़ार पर उर्स मनाकर उनकी याद ताज़ा कर लेते हैं। उर्स में भारत के कुछ सर्वश्रेष्ठ क़व्वाल अपनी अर्जित-साधना के सुमन बिखेर कर इस महान आत्मा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। कलापारखी श्री एलफर्ड जे. एडविन के शब्दों में 'हिन्द की मृदु-भाषी मैना—खुसरो' निश्चय ही युगों-युगों तक अमर रहेंगे।

गोपाल नायक

13वीं शताब्दी का उत्तर काल। प्रचलित परम्परा के अनुसार उस समय कलाकार प्रायः राज दरबार में रह कर अपनी कला-साधना करते थे। लोक-सम्मान तथा भौतिक-जीवन की समस्त आवश्यकताओं की प्राप्ति वहीं सरलता से हो जाती थी। उस समय के छोटे-छोटे जागीरदारों से लेकर बड़े सम्राटों के यहां तक कलाकारों को प्रश्रय देने का चलन था। उनके लिये यह गौरव की बात समझी जाती थी। इस प्रकार अपने मनोरंजन के साथ-साथ संगीत-कला का विकास एवं प्रचार भी होता रहता था।

संगीत में नायक का अर्थ है परिपाटियों एवं शैलियों के रचयिता। यह वह समय था जब अमीर खुसरो अलाउद्दीन ख़िलजी के दरबारी रत्नों में से थे। उसी समय देवगिरि राज्य के राजा रामदेव के दरबार में गोपाल नायक नाम के एक उच्चकोटि के संगीत-विद्वान थे। कहा भी गया है—"स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान सर्वत्र पूज्यते"। कलाकार गोपाल नायक द्वारा रचित काव्य-पंक्तियाँ उनकी ही मधुर धुन में बंध कर यत्र तत्र सर्वत्र सुनाई पड़ती थीं। कलाविद् गोपाल नायक स्वभाव से सीधे, सरल एवं महान साधक थे। उनका कला-प्रदर्शन आडम्बर रहित होता था और वे संगीत के विशेष गुण अर्थात् मनमोहकता में अधिक विश्वास रखते थे। इसीलिये श्रोताओं पर उनकी कला जादू-जैसा प्रभाव डालती थी।

सन् 1294 ई. में अलाउद्दीन ख़िलजी ने देवगिरि पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। परन्तु इस हार से गोपाल नायक की कीर्ति और साधना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अमीर खुसरो के मन में गोपाल नायक के लिये छिपा आदर अवश्य था, किन्तु वह अपनी विद्वत्ता की धाक भी जमाये रखना चाहते थे। उन्होंने अलाउद्दीन से गोपाल नायक की चर्चा की। फलस्वरूप अलाउद्दीन की इच्छानुसार एक संगीत-गोष्ठी में गोपाल नायक से अपनी कला के प्रदर्शन का अनुरोध

किया गया। वेदना में डूबा हुआ कलाकार विवशता के कारण अवज्ञा न कर सका। ऐसा प्रतीत हुआ कि कुछ क्षणों के लिये विजेता सम्राट अलाउद्दीन एक साधारण पुरुष मात्र ही हैं और कला-सम्राट गोपाल नायक ही उस वातावरण के एक मात्र क्षत्रपति हैं। कुण्ठा एवं प्रतिद्वन्द्विता की प्रवृत्ति ने वहां उपस्थित अमीर खुसरो के मन में एक प्रकार की कँपकँपी पैदा कर दी। वह कुछ घबरा-सा उठे। उन्होंने उठ कर गोपाल नायक से प्रतियोगिता की इच्छा प्रकट की। सरल व भावुक गोपाल को इसमें कोई आपत्ति नहीं थी। एक बार फिर गोपाल नायक ने अपनी कला का प्रदर्शन कर उपस्थित लोगों के मन को मुग्ध कर दिया। अब अमीर खुसरो की बारी थी। खुसरो अपने छल, चातुर्य एवं कौशल के बल पर वातावरण में एक विचित्र प्रकार का वायुमंडल उत्पन्न करने में सफल हो गये। संगीत-प्रतियोगिता में अमीर खुसरो विजयी घोषित हुए। यह सब होते हुए भी, मन ही मन खुसरो गोपाल नायक की सूक्ष्मदर्शी, हृदय को मथ डालनेवाली संगीत-लहरी पर बिक चुके थे। उतना खेल तो उन्होंने केवल अपनी अर्जित ख्याति को सुरक्षित रखने के लिये किया था। अब गोपाल नायक एक प्रकार से अमीर खुसरो के हो गये। अमीर खुसरो उन्हें अपने साथ दिल्ली ले गये। वहां उन्हें पूर्ण सम्मान प्राप्त हुआ। गोपाल नायक को दिल्ली जाकर अनेक नयी सुविधाएँ मिलीं, सम्मान मिला और अमीर खुसरो का निरंतर सम्पर्क प्राप्त हुआ। फलस्वरूप गोपाल नायक की प्रतिभा को निखरने का अवसर भी प्राप्त हुआ। गोपाल नायक की ख्याति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी। एक किंवदन्ती है कि जब कभी वे दिल्ली से बाहर जाते थे तब अपनी गाड़ी के बैलों के गले में समयानुसार राग-वाचक ध्वनि उत्पन्न करने वाले घंटे बाँध दिया करते थे।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी गोपाल नायक का स्थान अद्वितीय है। तत्कालीन संगीतशास्त्री चतुर कल्लिनाथ ने अपने 'रत्नाकर' ग्रंथ में ताल अध्याय की टीका में ताल-व्याख्या के अन्तर्गत गोपाल नायक का नाम बड़े आदर से लिया है। संगीत में कुटुक ताल गोपाल नायक की ही देन है।

इतिहासवेत्ताओं के अनुसार गोपाल नायक सन् 1294-95 के लगभग दिल्ली पहुँचे। उक्त समय के उपलब्ध संस्कृत-ग्रंथों में ध्रुवपद नामक प्रबन्ध का उल्लेख नहीं मिलता। अतः यह प्रायः निश्चित-सा है कि गोपाल नायक ध्रुवपद नहीं गाते थे। सम्भवतः अन्य प्रबन्धों पर उनका अधिकार था, जो संस्कृत, तमिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध होते थे।

गोपाल नायक दक्षिण के कलाकार थे। इससे सिद्ध होता है कि उस समय

उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण में अधिक उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे। गोपाल नायक जाति के ब्राह्मण थे। देवगिरि से आने के उपरान्त आप दिल्ली के ही हो गये। वस्तुतः दिल्ली ही नहीं समस्त उत्तर भारत आपकी कला से प्रभावित था। इस महान प्रतिभाशाली कलाकार के जीवन की अन्तिम घड़ियाँ दिल्ली में ही समाप्त हुईं।

तानसेन

विधिना यह जिय जानि के
शेषहि दिये न कान।।
धरा मेरु सब डोलते
तानसेन की तान।।

उक्त दोहे में महाकवि अब्दुल रहीम ख़ानख़ाना ने अपने समकालीन कला-सम्राट तानसेन का परिचय बड़े ही पाण्डित्यपूर्ण एवं सरल ढंग से दिया है। उनके अनुसार तानसेन की तान में वह शक्ति थी जिसके कारण धरा और मेरु तक डोल उठते थे।

अकबर के दरबारी साहित्यिक रत्न अबुलफ़ज़ल ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'आईने-अकबरी' में लिखा है कि तानसेन-जैसा गायक गत हज़ार वर्षों में भी नहीं उत्पन्न हुआ।

तानसेन का जन्म-काल

इस महान कलाकार का जन्म कब हुआ, यह विवादास्पद है। किंतु इतना निश्चित है कि इनका जन्म ग्वालियर से सात मील दूर 'बेहट' नामक ग्राम में हुआ। 'आईने-अकबरी' में अकबर के दरबारी 36 गायकों की नामावली दी है जिनमें से 15 कलाकार ग्वालियर के ही बताये गये हैं और उनमें सबसे पहला नाम तानसेन का है। 'जामे-उल्लुगात' के अनुसार भी मशहूर हिन्दुस्तानी गवैये तानसेन ग्वालियर के रहने वाले थे। एक जनश्रुति है कि बेहट ग्राम स्थित शिव की मूर्ति तानसेन के गायन के प्रभाव से ही टेढ़ी हो गयी थी जो आज भी उसी प्रकार टेढ़ी है। कहा जाता है कि तानसेन ने अपनी अधिकांश संगीत-शिक्षा राजा मानसिंह तोमर द्वारा

संचालित संगीत-विद्यालय में प्राप्त की थी।

ग्वालियर में ही तानसेन की समाधि है। इससे यह भी सिद्ध है कि उनकी मृत्यु ग्वालियर में ही हुई। अन्तिम समय में तानसेन ने अकबर से ग्वालियर जाने की इच्छा प्रकट की थी, किन्तु अकबर ने प्रेमवश उन्हें रुग्णावस्था में न जाने दिया। बाद में अकबर ने तानसेन की इच्छानुसार उनकी समाधि ग्वालियर में फ़क़ीर मुहम्मद ग़ौस के मकबरे के समीप बनवायी।

कहा जाता है कि संत ग़ौस के आशीर्वादस्वरूप ही तानसेन का जन्म हुआ। ग्वालियर में मकरंद पाण्डेय नाम के एक कर्मनिष्ठ ब्राह्मण रहते थे। वे विद्या, धन, ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न एवं सुखी थे। किन्तु इनके कोई सन्तान न थी। यह चिंता मकरंद पाण्डेय और उनकी पत्नी को सदा व्यग्र बनाये रखती थी। इसी बीच संत फ़क़ीर मुहम्मद ग़ौस से इनकी भेंट हुई और उनके आशीर्वाद से मकरंद पाण्डेय के यहां एक बालक का जन्म हुआ जिसका नाम तन्ना रखा गया। यही तन्ना आगे चलकर तानसेन नाम से प्रसिद्ध हुए।

तानसेन का जन्म-स्थान

मकरंद पाण्डेय के पुत्र तन्ना की जन्मतिथि के संबंध में कोई निश्चित मत स्थिर नहीं हुआ है। कुछ लोग तानसेन का जन्म-काल सन् 1532 ई. मानते हैं और कुछ फ़ारसी ग्रंथों के आधार पर तानसेन की मृत्यु हिजरी सन् 997 (सन् 1589 ई.) में हुई मानी जाती है।

'शिवसिंह सरोज' ग्रंथ के आधार पर डा. अग्रवाल ने तानसेन का जन्म सन् 1531 ई. माना है। डा. अग्रवाल इसके प्रमाण में एक ऐसा चित्र प्रस्तुत करते हैं जिसमें तानसेन को अकबर के दरबार में आते हुए चित्रित किया गया है। इन्हें एक चित्र और मिला है जिसमें तानसेन मजलिस में बैठे हैं! इस चित्र में डाक्टर महोदय ने तानसेन की अवस्था लगभग 31 वर्ष की अनुमान की है।

प्रख्यात संगीत-शास्त्री श्री कैलाशचन्द्र देव 'बृहस्पति' ने पूर्वोक्त चित्रों के निर्माण-काल तथा निर्माता के विषय में डा. अग्रवाल के मौन पर आपत्ति की है। उनके मत से चित्र से व्यक्ति की अवस्था का निर्णय करना संगत नहीं है।

डा. सुनीति कुमार चटुर्ज्या ने तानसेन का जन्म संवत् 1578 वि. (सन् 1521 ई.) में माना है।

श्री कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति ने तानसेन का जन्म सन् 1500 ई. के आसपास निश्चित किया है। आपका कथन है कि तानसेन के छोटे पुत्र बिलासख़ाँ की चर्चा

इतिहासकार फ़कीरुल्ला ने की है। सन् 1553 ई. में जब लालख़ाँ तानसेन के पास पहुँचा तब बिलासख़ाँ दस वर्ष की पुत्री के पिता थे,अर्थात् उनकी अवस्था उस समय कम से कम तीस वर्ष की रही होगी। अतः बिलासख़ाँ का जन्म 1523 ई.का होना चाहिये। यदि तानसेन के बड़े पुत्र तानरंगख़ाँ को बिलासख़ाँ से तीन वर्ष बड़ा माना जाये तो उनका जन्म-वर्ष 1520 ई. निकलता है।

यदि तानरंगख़ाँ के जन्म के समय तानसेन की आयु कम से कम 20 वर्ष मानी जाये तो तानसेन का जन्म-वर्ष 1500 ई. के आसपास ठहरता है। लालख़ाँ के सम्बंध में जहांगीर तथा फ़कीरुल्ला-जैसे प्रत्यक्षदर्शियों के साक्ष्य निर्भ्रान्त हैं। अतः इस आधार पर निश्चित तानसेन का जन्म-वर्ष अधिक प्रामाणिक है। इस आधार पर जब 1562 ई. में तानसेन का प्रवेश अकबर के दरबार में हुआ उस समय उनकी अवस्था 62 वर्ष होनी चाहिये।

तानसेन का बाल्यकाल

तन्ना (तानसेन) का जन्म बड़ी मनौतियों और प्रतीक्षा के उपरांत हुआ था। अतः ये माता-पिता के बहुत दुलारे थे। बालक तन्ना बड़ी स्वतंत्र प्रकृति के थे। नटखट होने के कारण राहगीरों को विभिन्न पशु-पक्षियों की बोली बोलकर डराया और चिढ़ाया करते थे। विभिन्न पशु-पक्षियों की बोली की नकल उतारने में वे सिद्ध थे। खेत की रखवाली करते समय वे शेर की बोली बोला करते थे। एक बार उनके खेत के पास से संगीतऋषि स्वामी हरिदासजी अपने शिष्यों के साथ गुज़र रहे थे। नित्य की भाँति तन्ना उनको डराने के लिये शेर की आवाज़ में दहाड़े। यह आवाज़ सुन सभी भयभीत हो उठे। किन्तु उस स्थान पर शेर के होने की कोई सम्भावना नहीं थी, इसलिये स्वामी हरिदास ने चारों ओर खोज कराई। तन्ना एक पेड़ पर चढ़े शेर की आवाज़ में दहाड़ते पकड़ लिये गये। स्वामीजी ने उनसे और भी कई पक्षियों की बोलियाँ सुनीं। तन्ना की प्रतिभा से प्रसन्न हो वे उन्हें अपने आश्रम में ले गये। स्वामीजी तन्ना को संगीत-शिक्षा देने लगे और 10 वर्ष में तन्ना एक कुशल गायक बन गये। यहीं उनका नाम तानसेन पड़ा।

संगीत-शिक्षा के उपरांत स्वामी हरिदास की आज्ञा से तानसेन ग्वालियर में ही बस गये। तानसेन के पिता अपनी मृत्यु के समय तानसेन को बतला गये थे कि वे संत फ़कीर मुहम्मद ग़ौस की ही अमानत हैं। अतः कभी भी उनकी आज्ञा का उल्लंघन न करें। तानसेन मुहम्मद ग़ौस के पास गये। संत ग़ौस ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। कुछ दिनों बाद जब संत मुहम्मद ग़ौस की मृत्यु हो

गयी तब तानसेन उनकी अपार धनराशि के स्वामी हुए। यहीं पर राजा मानसिंह की पत्नी 'मृगनयनी' ने, जो स्वयं एक कुशल गायिका थीं, तानसेन का गायन सुना और बहुत प्रसन्न हुईं। कहा जाता है कि उन्होंने अपनी शिष्या हुसेनी से तानसेन का विवाह कर दिया। कुछ संगीत-शास्त्रियों के अनुसार तानसेन के दो विवाह हुए थे।

इस समय तक तानसेन एक सिद्ध गायक हो चुके थे। रींवा के राजा रामचन्द्र इनके गायन पर मुग्ध हो इन्हें अपने दरबार में ले गये। राजा की सम्राट अकबर से काफी घनिष्ठता थी। अतः उन्होंने सम्राट के आग्रह पर इस अमूल्य रत्न को सम्राट अकबर को उपहारस्वरूप भेंट कर दिया। कुछ इतिहासकारों के अनुसार सन् 1562 और कुछ के अनुसार सन् 1556 में तानसेन अकबर के दरबार में गये।

कलापारखी अकबर ने तानसेन की गायन-कला पर मुग्ध हो इन्हें अपने नौ रत्नों में स्थान देकर सम्मानित किया।

जन-श्रुतियों के अनुसार तानसेन के संगीत में विलक्षण चमत्कार थे। अकबर के समय में गायन के प्रभाव से दिया जलाने, पानी बरसाने, पशुओं को मुग्ध करने की गाथायें प्रचलित हैं। एक किंवदंती है कि तानसेन की उन्नति देखकर उनके समकालीन गायक उनसे जलने लगे थे। उन्होंने सम्राट अकबर से कहा कि वे तानसेन से दीपक राग गवायें। अकबर ने तानसेन से दीपक राग गाने को कहा। पहले तो तानसेन ने दीपक राग के प्रभाव बताये और गाने से इन्कार किया। किन्तु अकबर न माने। अंत में तानसेन ने दीपक राग की अवतारणा आरम्भ की। कहा जाता है कि इस राग के प्रभाव से सारा वातावरण अग्निमय हो उठा और दरबारी दरबार छोड़ कर भाग गये। जब तानसेन के शरीर से लपटें निकलने लगीं तो वे भाग कर घर गये। वहां उनकी लड़की ने मेघराग गाकर जलवृष्टि की, जिससे तानसेन को शीतलता प्राप्त हुई और उनके प्राण बचे। इस घटना से अकबर बहुत दुखी हुए। इसके पश्चात् तानसेन रुग्ण रहने लगे और सन् 1589 ई. में आपकी मृत्यु हो गयी।

तानसेन ने दरबारी, कान्हड़ा, मियाँ की मल्हार, मियाँ की तोड़ी और मियाँ की सारंग आदि रागों की रचना की। यह एक सुन्दर कवि भी थे। आपने अनेक ध्रुवपदों की रचना की जिनमें प्रयुक्त साहित्य उच्च कोटि का है। राग भूप कल्याण में तानसेन विरचित ध्रुवपद की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

स्थायी

तू ही सूर तू ही चन्द्र तू ही पवन तू ही अगिन
तू ही आप तू आकाश तू ही धरणी यजमान

अंतरा

भव रुद्र उग्र सर्व पशुपति सम समान
ईशान भीम सकल तेरे ही अष्ट नाम

तानसेन की जाति

तानसेन की जाति के बारे में काफी मतभेद है। कोई इन्हें मिश्र, पांडे, तैलगू ब्राह्मण, चतुर्वेदी ब्राह्मण लिखते हैं। बृहस्पतिजी का मत है कि अबुलफ़ज़ल ने उस समय में संगीतज्ञों की जाति कलावंत—जो प्रधानतया ध्रुवपद गाते थे, का उल्लेख किया है। फ़कीरुल्ला ने भी कलावंत, ढारी आदि का परिचय दिया है और हमीरसेन, उसके पुत्र सोहिलसेन (तानसेन के पोते सोहिलसेन से भिन्न) तथा सुधीनसेन नामक कलावंतों की भी चर्चा की है। सेन पर समाप्त होने वाले नाम प्रायः कलावंत जाति के हिन्दुओं के थे और तानसेन भी कलावंत ही थे। यह निश्चित है कि तानसेन मुसलमान नहीं थे।

भारतीय संगीत के विष्णुद्वय

आधुनिक काल में भारतीय संगीत के नव-संस्कार एवं उसके प्रचार-प्रसार में मूर्धन्य संगीत-शिरोमणि श्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर और पण्डित विष्णु नारायण भातखण्डे का महत्वपूर्ण योग रहा है। संगीत जगत सदैव ही इन्हें 'संगीत के उद्धारक' के रूप में स्मरण करता रहेगा।

भारतीय संगीत में कई शताब्दी पूर्व से, विजातीय तत्वों का समावेश होता रहा और ब्रिटिश-काल में तो वह और भी भ्रष्ट हो गया। संगीतकार अल्प साधना द्वारा अपने उथले मनोभावों की तृप्ति में लगे रहे। ऐसे संकट काल में श्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर और श्री विष्णु नारायण भातखण्डे ने अपनी कला-साधना और अध्यवसाय द्वारा पुनः कलामनीषी शारंगदेव, गोपाल नायक, बैजू बावरा, स्वामी हरिदास द्वारा स्थापित परम्पराओं में एक निखार उत्पन्न किया।

संगीत-कला को राज दरबारों और उस्तादों की कोठरियों से खींच जनता के समीप लाने और इसे लोक-रूप देने का श्रेय इन दो संगीत-मनीषियों को सर्वाधिक जाता है। स्थान-स्थान पर संगीत-विद्यालयों की स्थापना, संगीत-सम्मेलनों का शुभारम्भ एवं नोटेशन पद्धति का आविष्कार कर इन स्वनामधन्य कलाकारों ने जन-जन में संगीत के प्रति आस्था और निष्ठा का संचार किया।

श्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर और श्री विष्णु नारायण भातखण्डे का जीवन-वृत्त आगामी पृष्ठों में दिया जा रहा है।

विष्णु दिगम्बर पलुस्कर

संगीत शिरोमणि पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का जन्म सन् 1872 ई. में श्रावणी-पूर्णिमा के दिन बेलगाँव स्थित कुरुन्दबाड़ा रियासत के एक सुसंस्कृत एवं समृद्ध महाराष्ट्रीय परिवार में हुआ। 15 वर्ष की अवस्था में आतिशबाजी से खेलते हुए आपकी आँख में चोट लग गयी।

हर सम्भव उपचार के बाद भी आँख ठीक नहीं हो सकी। डाक्टरों ने आपके नेत्रों के लिये स्कूली शिक्षा को हानिकारक बताया। अतः अन्य कोई उपाय न देख इन्हें संगीत-शिक्षा दिलाने का निश्चय किया गया।

सर्वप्रथम विष्णु दिगम्बर ने आचार्य बालकृष्ण बुआ से संगीत-कला की शिक्षा ली। श्री बालकृष्ण बुआ, हद्दू-हस्सूखाँ के परम शिष्य वासुदेव जोशी के प्रिय शिष्य थे। काफी समय तक श्री बालकृष्ण बुआ के शिष्यत्व में संगीत की स्वरलहरी का अभ्यास करते-करते विष्णु दिगम्बर के हृदय को संगीत-रूपी मोहन-माधुरी ने वशीभूत कर लिया और उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन संगीत के लिए अर्पण करने का व्रत ले लिया। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि उस समय समाज में संगीत को हेय कला के रूप में देखा जाता था और सभ्य समाज में संगीत की प्रतिष्ठा गिर चुकी थी। ऐसे संकट काल में संगीतोद्धारक पण्डित विष्णु दिगम्बर ने भारत में संगीत के पुनरुत्थान का बीड़ा उठाया। प्रभावशाली व्यक्तित्व, मधुर कंठ और ओजपूर्ण वाणी से युक्त आचार्य विष्णु दिगम्बर अपने संकल्प को पूर्ण करने में आशा से अधिक सफल हुए।

प्रचारक पलुस्कर

श्री विष्णु दिगम्बर ने संगीत के प्रचारार्थ देशाटन करने का निश्चय किया

और सर्वप्रथम सतारा गये। तदुपरान्त बड़ौदा, काठियावाड़, जूनागढ़ तथा पंजाब आदि स्थानों में संगीत-ध्वज लहराते हुए आपने सम्पूर्ण उत्तर भारत का पर्यटन किया।

सन् 1901 में लाहौर में आपने प्रथम गांधर्व विद्यालय की स्थापना की। इस विद्यालय को चलाने में पण्डितजी तथा उनके सहयोगियों को आर्थिक संकट के साथ जनता के विरोध का भी सामना करना पड़ा किन्तु वे कभी निराश नहीं होते थे। इसी समय महाराजा काश्मीर के निमन्त्रण पर आप काश्मीर गये। वहाँ आपने अपने मनमोहक संगीत प्रदर्शन द्वारा महाराज को आत्मविभोर कर दिया, जिससे प्रसन्न हो महाराज ने आपको बड़ी धनराशि पुरस्कारस्वरूप दी और जीवनपर्यन्त इनकी सहायता करने का वचन दिया। दुर्गम पथ का एक बड़ा अवरोध समाप्त हुआ। लाहौर के गांधर्व महाविद्यालय को अब धन का अभाव न रहा। विद्यालय दिन प्रति दिन उन्नति करने लगा। इस विद्यालय में संगीत शिक्षण के साथ ही निर्धन व प्रतिभाशाली छात्रों के भरण-पोषण का भी प्रबन्ध था। क्रमबद्ध सुनियोजित संगीत-शिक्षा के साथ ही इस विद्यालय में वाद्यों की मरम्मत, मुद्रण तथा पत्रकारिता का अभ्यास भी कराया जाता था। आचार्य विष्णु दिगम्बर विद्यालय के उक्त कार्यों को समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जनता के सम्मुख भी लाते रहते थे। इससे संगीत के प्रति समाज में आदर का भाव पैदा हुआ। उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं निर्मल चरित्र ने कला-प्रेमियों में संगीत के प्रति आस्था उत्पन्न की। धीरे-धीरे शताब्दियों की निर्जीव कला में फिर प्राण आये। समाज में उसकी लोकप्रियता बढ़ी। कालान्तर में आपने अन्य विद्यालयों की भी स्थापना की। इन विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले सभी छात्र-छात्राओं को विष्णु दिगम्बर रचित स्वरलिपि (नोटेशन) के आधार पर शिक्षित किया जाता है। सभी विद्यालयों में यही एक नोटेशन, एक समान पाठ्यक्रम तथा परीक्षाओं में एक ही प्रश्न-पत्र होने के कारण आचार्य विष्णु दिगम्बर की ख्याति बहुत बढ़ी और संगीत-कला में एकरूपता स्थापित होने की दिशा में अभूतपूर्व कार्य हुआ। सर्वश्री विनायकराव पटवर्धन, नारायणराव व्यास, ओंकारनाथ ठाकुर, देवधर आदि पण्डित जी के प्रमुख शिष्य हैं, जो आज भी संगीत सेवाव्रत में संलग्न हैं।

जनगायक पलुस्कर

श्री विष्णु दिगम्बर द्वारा स्थापित विद्यालयों से मध्यम श्रेणी के शिक्षित और धनी वर्ग में संगीत के प्रति सद्भाव उत्पन्न हुआ। किन्तु इतने से उन्हें संतोष नहीं हुआ। उनकी आत्मा तो जन-मन को संगीत से निःसृत अमृत-रसधार से सींचकर

सम्पूर्ण भारत को संगीतमय बनाने को छटपटा रही थी। अतएव उन्होंने स्थान-स्थान पर संगीत-सम्मेलनों का आयोजन आरम्भ किया। इन सम्मेलनों के माध्यम से वे विशाल जन-समूह को अपने प्रभावशाली सुमधुर गायन द्वारा संगीत-कला की ओर आकृष्ट करते थे। कुछ समय बाद देशभक्त विष्णु दिगम्बर अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर ही संगीत-सम्मेलन भी आयोजित करने लगे।

राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत गीतों को स्वरबद्ध कर आपने उन्हें छपाकर जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। 'वंदेमातरम्' तथा 'रामधुन' पर आपकी विशेष श्रद्धा थी। इन्हें आप प्रायः प्रत्येक स्थान पर गाते थे। कोकनद कांग्रेस के अवसर पर 'वंदेमातरम्' पर लगाये गये प्रतिबन्ध को सर्वप्रथम राष्ट्रवीर विष्णु दिगम्बर ने ही तोड़ा था।

साहित्य-रचना

पण्डितजी ने संगीत-विषयक लगभग 250 पुस्तकों का प्रकाशन कर कला-जगत में स्थायी संगीत-साहित्य का निर्माण किया है। इनमें से 54 पुस्तकें स्वर-लिपि (नोटेशन) पर लिखी गयी हैं। 'संगीत बाल-प्रकाश', 'स्वल्पालाप गायन', 'संगीत-तत्व-दर्शक', 'राग-प्रवेश', 'भजनामृत लहरी' आदि कृतियाँ उनकी अनन्यतम रचनाएँ हैं। 'संगीत-प्रवाह' नामक पत्रिका का 16 वर्ष तक संपादन कर उन्होंने जो सेवा की, वह संगीत के इतिहास में अमर रहेगी।

भक्त पलुस्कर

राम-भक्त पलुस्कर ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में, नासिक में पंचवटी के समीप ही राम-नाम आश्रम की स्थापना की। इस समय से आपने संत का वेष धारण कर लिया और स्थान-स्थान पर राम-कथा का प्रवचन करने लगे। वे इतने स्वाभिमानी थे कि प्रवचन के समय विघ्न डालने वाले राजाओं तक को फटकार देते थे। मृत्यु से कुछ दिन पूर्व आपमें वैराग्य उत्पन्न हो गया था। एकांत में घण्टों राम नाम का भजन किया करते थे। सन् 1931 ई. में 21 अगस्त को इन महान कलाविद् का शरीरांत हो गया। आज संगीत-ऋषि आचार्य विष्णु दिगम्बर पलुस्कर हमारे बीच में नहीं हैं किन्तु भारतीय संगीत-जगत आनेवाले युगों तक उनसे प्रेरणा पाता रहेगा।

पण्डित विष्णु नारायण भातखण्डे

आधुनिक संगीत-विधाता श्री विष्णु नारायण भातखण्डे का जन्म गोकुल अष्टमी के दिन, 10 अगस्त सन् 1860 ई. को बम्बई राज्य के बालकेश्वर ग्राम में हुआ।

भातखण्डेजी को बाल्यकाल से ही संगीतमय वातावरण मिला। उनके पिता वकील थे, किंतु माता एक सुयोग्य वैद्या थीं एवं अद्वितीय संगीतज्ञ भी थीं। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। पंडितजी की रुचि बचपन से ही संगीत की ओर थी। अपनी माता का गायन सुनकर आप उसे उसी प्रकार उतार लेते थे। माता ने पुत्र में यह गुण देख उन्हें संगीत-शिक्षा दिलाने का निश्चय किया। किन्तु इनके पिता इन्हें एक कुशल वकील के रूप में देखना चाहते थे। अतः स्कूली शिक्षा के साथ-साथ आपको संगीत-शिक्षा भी दी जाने लगी। सन् 1883 में आपने बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की।

प्रारम्भ में पण्डितज़ी को बाँसुरी के प्रति कुछ अधिक रुचि थी। अतएव बाँसुरी बजाने में थोड़े ही समय में वह निपुण हो गये। छात्र जीवन में ही आपने सूर कलाकार श्री वल्लभदास और श्री जैराजगिर से सितार-वादन सीखा।

कालांतर में आपको बम्बई-स्थित एलफिंस्टन हाई स्कूल में अध्यापन कार्य मिल गया। वहीं रह कर सन् 1890 में आपने कानून की परीक्षा पास की। संगीतज्ञ होने के साथ ही पण्डितजी कवि भी थे। छात्रों को भूगोल तथा इतिहास पढ़ाने के लिये वे पाठ्य-सामग्री का पद्यानुवाद कर लिया करते थे।

वकील के रूप में आप पहले कराँची और तत्पश्चात् बम्बई में वकालत करते रहे। बम्बई में आपको कई उत्कृष्ट कलाकारों को सुनने का अवसर मिला। इससे आप पुनः संगीत की ओर आकर्षित हुए और ज्ञानोत्तेजक मंडल के प्रख्यात ध्रुवपद

गायक श्री रावजी बुआ बेलगावकर, श्री अलीहुसेन तथा उस्ताद विलायतख़ाँ से संगीत-शिक्षा प्राप्त की।

ज्ञानोत्तेजक मंडल में परम्परानुसार पुराने ढंग से ही संगीत-शिक्षा दी जाती थी। किन्तु जिज्ञासु भातखण्डेजी संगीत का गहन अध्ययन कर उसमें कुछ क्रांतिकारी परिवर्तन करना चाहते थे। फलस्वरूप आपने लगनपूर्वक संगीत संबंधी सम्पूर्ण प्रामाणिक शास्त्रों का अध्ययन किया। किन्तु इतने से ही आपकी ज्ञान-पिपासा शान्त न हुई। विभिन्न स्थानों पर जाकर आपने विभिन्न घरानों के संगीतज्ञों से भेंट कर उनकी गायन-शैलियों का परीक्षण किया। तत्पश्चात् पुरातन संगीत-शास्त्र व तत्कालीन विभिन्न गायन शैलियों का समन्वय कर आपने अपनी नवीन स्वर लिपि (नोटेशन) की रचना की। ज्ञानोत्तेजक मंडल के संचालक अपने मंडल में उसी के अनुसार शिक्षा देने लगे।

संगीत-साधक भातखण्डे को अभी भी संतोष नहीं हुआ। 'दिखिया-सिखिया-परखिया' अर्थात् देखकर, सीखकर और परखकर ही किसी वस्तु में पूर्णता प्राप्त हो सकती है के अनुसार अब आपने दक्षिण का पर्यटन आरम्भ किया। वहां प्रचलित सभी संगीत-शैलियों और शास्त्रों का अध्ययन कर आप पुनः जयपुर गये। वहां मानरंग घराने के श्रेष्ठ गायक उस्ताद मोहम्मद अली से उनके घराने का संगीत सीखा। ग्वालियर के पं. एकनाथ राव के संरक्षण में भी आपने कुछ समय तक उस क्षेत्र की गायन शैली का अध्ययन किया। इस प्रकार अब पंडितजी सम्पूर्ण भारत की संगीत-स्थिति से अवगत हो गये।

संगीतोद्धारक भातखण्डे

वर्षों के अथक परिश्रम के बाद भातखण्डेजी ने स्थिर किया कि प्राचीन काल में प्रचलित ग्राम और मूर्छना का स्थान अब थाट और राग ने ले लिया है। इसके अतिरिक्त गायक प्रायः गाते तो ठीक हैं किन्तु उन्हें रागों का सही ज्ञान नहीं है। अब उन्होंने इधर ध्यान दिया।

स्वाध्यायी संगीतज्ञों के लिये आपने उनके उपयुक्त संगीत-ग्रंथों की रचना की। संस्कृत भाषा में 'अभिनव-राग मंजरी' एवं 'लक्ष्य संगीत' तथा मराठी भाषा में 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' (चार भाग) का प्रकाशन आपने कराया। 'स्वर-मालिका' (6 भाग), 'संगीत-दर्पण' एवं 'गीत-मालिका' ग्रंथ संगीत के विभिन्न अंगों पर लिखे। आपने 'गीत मालिका' नामक संगीत-पत्रिका का भी प्रकाशन कराया। लेकिन थोड़े समय बाद ही वह बन्द हो गयी। उक्त पुस्तकों में आपने प्राचीन संगीत का विश्लेषण

तो किया ही साथ में संगीत को नवीन दिशा की ओर अग्रसर किया। भातखण्डेजी ने अपना शुद्ध थाट बिलावल मानकर केवल 10 थाटों से ही रागों का वर्गीकरण किया है।

महफ़िली संगीतकारों में ज्ञानप्रसार एवं संगीत में एकरूपता लाने के लिये आपने स्थान-स्थान पर संगीत-सम्मेलन आयोजित किये। इन सम्मेलनों में सर्वसाधारण में संगीत के प्रति अभिरुचि पैदा करने के लिये आप संगीत संबंधी व्याख्यान देते थे। संगीत-शास्त्रियों की गोष्ठियाँ कर संगीत का एक रूप स्थिर करने का प्रयास उन्होंने किया। इन संगीत-सम्मेलनों में कई रागों के रूप एवं गायन शैलियाँ निश्चित हुईं। बड़ौदा, ग्वालियर और लखनऊ में संगीत विद्यालयों की स्थापना में भी आपका बहुत हाथ था। ये विद्यालय आज संगीत के प्रमुख केन्द्र हैं। पंडितजी ने 'स्वर-मालिका' और 'लक्षण-गीत' के अतिरिक्त ध्रुवपद और ख़्यालों की भी रचना की।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में महामना मालवीयजी के आग्रह पर आपने ही वहां सर्वप्रथम संगीत-विभाग की स्थापना की। पूना के नारी विश्वविद्यालय तथा बम्बई के प्रायमरी स्कूलों के लिए पाठ्यक्रम भी आपने निर्धारित किया।

साधु-स्वभाव भातखण्डेजी ने अपनी पुस्तकों की आय कभी भी अपने ऊपर व्यय नहीं की। वे सही मायने में सादा जीवन उच्च विचार वाले व्यक्ति थे। एकांतप्रिय भातखण्डेजी नियमित रूप से पूजा-पाठ किया करते थे।

संगीत-शास्त्री आचार्य रानाडे ने ठीक ही लिखा है, 'यह बात मस्तिष्क में नहीं समाती कि उन्होंने (भातखण्डेजी) अपने जीवनकाल में जो असाधारण कार्य किया, वह कोई व्यक्ति एक जीवनकाल में कैसे इतनी सफलतापूर्वक कर सकता है।'

सन् 1933 ई. में आप पर फ़ालिज का आघात हुआ और जांघ की हड्डी टूट गयी। संगीत-संसार में यह समाचार दावानल की भांति फैल गया। देश भर में आपके जीवन के लिये मनौतियाँ मानी गयीं। किन्तु दैव को यह स्वीकार न था। सन् 1936 में गणेश चतुर्थी के दिन 19 सितम्बर को आपका निधन हो गया।

आज भातखण्डेजी हमारे बीच में नहीं हैं किन्तु उनकी कृतियाँ और संगीत के प्रति उनकी सेवायें युगों-युगों तक उन्हें अमर रखेंगी। आज भी उनके द्वारा स्थापित सभी संगीत-विद्यालयों में प्रति वर्ष 72 घंटे का अनवरत संगीत-धारा का कार्यक्रम आयोजित कर उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है। निश्चय ही संगीत-इतिहास में भातखण्डेजी का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा।

संगीत में प्रचलित गायन शैलियां, प्रमुख रागों की व्याख्या, उत्तर भारतीय संगीत की प्रमुख तालें और उनकी विभिन्न लय, भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास एवं संगीत के क्षेत्र की प्रमुख हस्तियों की जीवनियां समाहित हैं।

'संगीत कला की उन्नति के लिए विचारणीय विषय' शीर्षक से 'सा रे ग म' के लेख में पंडितजी ने आज़ादी के बाद के भारत में सांस्कृतिक एवं कलात्मक क्षेत्रों में मौजूद चुनौतियों, समस्याओं और इन क्षेत्रों के विकास के लिए संभावित प्रयासों को रेखांकित किया है। संगीत में शुद्ध, सरस और सुंदर साहित्य के प्रयोग की आवश्यकता पर उन्होंने बल दिया। केवल संगीत के विद्यार्थी ही नहीं, संगीत के जिज्ञासु भी इस किताब की रोचकता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहेंगे।

राधावल्लभ चतुर्वेदी ध्रुपद, धमार, ख़याल, ठुमरी, ग़ज़ल आदि शैलियों के निष्णात गायक रहे, लेकिन लोकगीतों के क्षेत्र में उनका एकाधिकार सर्वमान्य एवं निर्विवाद है।

पं. राधावल्लभ चतुर्वेदी कृत 'ऊंची अटरिया रंग भरी' पुस्तक में सरिया, सोहर, मुंडन, टोना, जेवनार, विदाई, चकिया, पनघट, कजरी, झूला, चौमासा, चैती, रसिया, देवीगीत, धमार आदि कई प्रकार के 106 लोकगीत स्वरलिपि एवं परिचय सहित मुद्रित हैं। लोकगीतों को रागबद्ध करने में शास्त्रीय निपुणता की एक बड़ी आवश्यकता को उन्होंने पूरा किया।

जिस तरह भोजपुरी लोकगीतों के बहाने भिखारी ठाकुर याद किये जाते हैं, बुंदेली फाग के लिए ईसुरी का उपकार है, अवधी लोकगीतों के संदर्भ में राधावल्लभ चतुर्वेदी को हमेशा याद किया जाएगा।

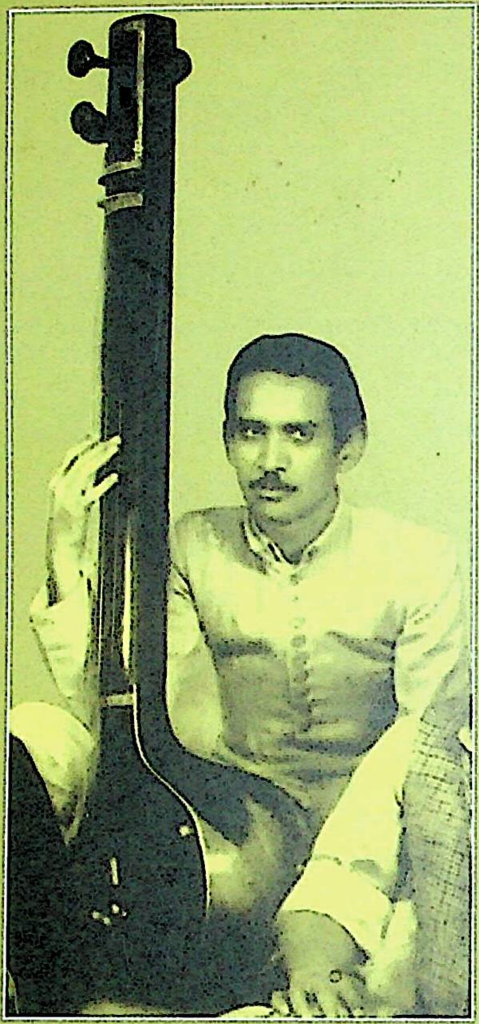

पं० राधावल्लभ चतुर्वेदी

संगीत नाटक अकादेमी
Sangeet Natak Akademi